भूमिकालेखकः—
परमहंसपरिव्राजकाचार्य-
श्रीविद्यारण्यस्वामी
उपनाम-श्रीमूर्खारण्यमहाराजः

प्रथमावृत्तिः
१०००

|| યતિદણ્ડૈશ્વર્યવિધાનપદ્ધતિઃ ||

(શિવાવતાર-ભગવત્પાદ-
શઙ્કરાચાર્યેણ પ્રણીતઃ)

मूल्यम्—
50
पञ्चाशद्रूप्यकाणि

સમષ્ટિનિર્મિતતેજાઃ પરજ્ઞાનપ્રકાશનઃ |
જયતાજ્ઞાનકીનાશો વેદવેદ્યો મહામતિઃ ||
ankurnagpal108@gmail.com

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—

प्रकाशक :
गोवर्धनमठः
जगन्नाथपुरी
(उड़ीसा)

मुद्रक :—
श्री शङ्कर आर्ट प्रिण्टर्स
त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर–२

• भगवान् श्रीचन्द्रमौलीश्वरो विजयते •

श्रीमन्निखिल-महीमण्डलाचार्यचक्रचूडामणीनां सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणां
यतिपतिभास्कर - प्रभृतिविविधविरूदावली - विभूषितानां
राजराजेन्द्र - समभ्यर्चित - चरणारविन्दानामद्वैत-
मतप्रवर्तक-जगद्गुरु-भगवत्पादश्रीशङ्कराचार्य
संस्थापित-श्रीगोवर्द्धनपीठाधीश्वराणाम्
अनन्तश्रीविभूषित-श्रीनिरञ्जनदेव-
तीर्थस्वामिचरणानाम्

शुभाशीर्वादः

मायिकेऽस्मिन्निखिलेऽपि प्रपञ्चे देहाद्युपकरणसंघाताभिमानिनोऽन्तःकरणावच्छिन्नस्य जीवाभिधानस्य चैतन्यस्य ब्रह्मानन्दात्मस्वरूपलाभ एव परमं प्रयोजनमिति-तदवाप्तये भगवत्पादैराद्यशङ्कराचार्यवर्यैरस्ति काचन साधनासरणिरूपदिष्टा । तत्र ते भूयांसि ग्रन्थरत्नानि प्रणिन्यिरे । तेष्विदं 'यतिदण्डैश्वर्यविधानम्' वैशद्येन हृदयग्राहितया च साधनाया उच्चतम-भूमिकां निर्वोढुं सक्षमं सत् सर्वमूर्धानमधिरोहति । अत्र दण्ड-पिण्ड-ब्रह्माण्ड श्रीयन्त्राणामेकत्वं प्रतिपादितम् । 'परोक्षप्रिया हि देवाः' इति नैगमिकं 'सङ्केतविद्या गुरुवक्त्रगम्या'—इति चागमिकं सिद्धान्तं भगवत्पादाः पदे पदे प्रत्यपीपदन् ।

विभूति-तत्त्व-साधना-सिद्धिरूप-पादचतुष्टयात्मकस्यास्य रहस्यं सद्-गुरुचरणाश्रयपुरस्सरमध्ययनेनैव बोधविषयीभविष्यति । योगविद्यायाः श्रीविद्यासपर्यायाश्च प्रासंगिकतत्त्वानां यादृक्षं वैशद्यमत्र प्रत्यपीपदन् भगवत्पादास्तादृक्षं नान्यत्र कुत्रापि सारल्येनावगन्तुं शक्यमित्यस्य ग्रन्थस्य महिमातिशयः । ग्रन्थरत्नमिदं यावज्जीवं नैकविधतन्त्रान्वेषणप्रवणेन मूर्खारण्योपाह्व-श्रीविद्यारण्यस्वामिना महता श्रमेण नेपालदेशादानीतमिति-तदर्थं श्रीस्वामिमहोदयः सर्वथा साधुवादार्हः । तथाचायं ग्रन्थो न केवलं यतीनामेवोपयोगी, अपि तु तन्त्रागमश्रीविद्या-मर्मबुभुत्सूनामपि कृतेऽवश्य-मुपयोगमावहेदित्यतो हेतोः प्रकाशितोऽयं ग्रन्थः साधकानां हिताय लोक-कल्याणाय च भवेदित्यकारणकरुणावरुणालयं भगवन्तं श्रीचन्द्रमौलीश्वर-मभ्यर्थयते—

आद्यशङ्कराचार्यजयन्ती
वैशाखशु. ५ बुधवासरः
वैक्रमाब्दः २०४३
पुरी

श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थस्वामी

भावप्रसूनाञ्जलि

जिनके अथक परिश्रम से आद्यशङ्कराचार्य की दुर्लभकृति 'यतिदण्डैश्वर्यविधान' नेपाल से भारतीयों को सुलभ हुयी, ऐसे प्रातःस्मरणीय गुरुदेव को शत-शत प्रणाम ।

देव ....

गुरु ने तो विद्यारण्य नाम दिया—पर, आपने किसी को यह कहां पता चलने दिया । "श्रीविद्या" के साक्षात् स्वरूप होकर भी अपने को 'मूर्खारण्य' ही कहला कर प्रसन्न होते रहे ।

परिचय तो शरीर का होता है—व्यक्ति का होता है । आप तो सकल दिव्यताओं की अभिव्यक्ति थे । भला, प्रकाशपुंज का भी कोई परिचय होता है । देह और नाम से परे देदीप्यमान ज्योति—जिसे न अपने नाम की इच्छा, न देह की इच्छा । सदैव प्रकाश का अक्षयकोष लुटाने की निरन्तर ललक ।

काशी के किसी कुलीन-सम्पन्न-ब्राह्मण घर में जन्म । युवा होते होते गृहत्याग, अयाचक, अपरिग्रही, परिव्राजक । कठोर साधना और योगाग्नि से प्रदीप्त ।

मानवशरीर के लघुपिण्ड में विराट् की खोज को उत्सुकपिण्ड में साकार ब्रह्माण्ड दर्शन, मानव शरीर में नाड़ीरहस्य के एकमात्र अन्वेषक—नाड़ीजगत् के अज्ञात केन्द्रों, कोषों, और चक्रों के उद्घाटक ।

मानव शरीर की 72000 नाड़ियों के नामों का अन्वेषण । उनका उद्भव, विकास, प्रभाव और शक्ति का ज्ञान । दिव्यनाड़ियों के जागरण की विधि । यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र तथा योग और औषधि द्वारा मानवीयनाड़ी जागरण का रहस्य ज्ञान ।

पिण्डस्थ शक्तियों द्वारा विराट् के रहस्यों के समन्वय और नियन्त्रण, पिण्ड के हाथों में विराट् को सौंप देने की दृढ़ आकांक्षा ।

हे महान्....

यही सब आपका दैनिक लीलाविलास था । आप वह रत्नाकर थे जिनके समीप जो जितना आया उतना ही निहाल हुआ । किसने कितना पाया—कौन कह सकता है ?

भारत को 'श्रीविद्या' का आकार देने वाले–उसे आध्यात्मिक गरिमा से मण्डित करने वाले–देश के ज्ञात एवं अज्ञात शक्तिपीठों के अथक अन्वेषक। नेपाल को बृहत्तर भारत का अंग मानकर–वहां रहकर यन्त्र, तन्त्र और मन्त्रों के खण्डितरहस्यों का सुसंयोजन और व्याख्या करने वाले एक आप ही तो थे।

'श्रीयन्त्र' में विश्व की स्थिति और उसमें हृदयस्थल के रूप में भारत का निर्धारण करने वाले भी आप ही थे। आजीवन यन्त्र मन्त्र और तन्त्र की खोज, उनके खण्डित रहस्यों का समीकरण, साधकों क सही निर्धारण और मार्गदर्शन, जिज्ञासुओं में अपने अनुभव और आभास उडेलने की सहज आतुरता–यह सब आपका स्वभाव बन चुका था।

आद्यजगद्गुरु आचार्य श्रीशंकरभगवत्पाद की जन्मभूमि कालटी से लेकर उनके सम्पूर्ण यात्राक्रम और क्षेत्रों का अनुसन्धान, उनके द्वारा संस्थापित चारों पीठों से सम्बद्ध आठ-आठ उपपीठों की खोज–यह आपका ही पौरुष था।

नेपाल में आद्यशंकर के एक वर्ष के आवासकाल की दैनिकचर्या का अनुसन्धान कर अनेक ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश, आद्यशंकर द्वारा भगवान् पशुपतिनाथ मन्दिर का पुनरूद्धार एवं उनके द्वारा निर्धारित पूजा-पद्धति का अद्यावधि अनुसरण होना, आद्यशंकर की दिग्विजयों का तथ्यपरक वर्णन–यह सब आपकी ही सामर्थ्य थी।

आद्यशंकर का यह अनुपम, अज्ञात और दिव्य ग्रन्थरत्न आपके अन्वेषण का ही पुण्य प्रतिफल है। कितने कष्टों और पीड़ाओं को झेलकर इसकी प्रतिलिपि आप कर सके। इस अलौकिकरत्न की खोज में जाने कितनी संदिग्ध दृष्टियों एवं कुचक्रों का साहसपूर्वक सामना आप ही कर सके।

देव....

यह कितने सौभाग्य का क्षण है कि आपकी इच्छा के अनुरूप ही आद्यशंकर की यह दिव्यकृति "यतिदण्डैश्वर्यविधान" प्रकाशन पा रही है। आप तो अनाम ही रहे। आपके प्रकाश से अनेकों प्रकाशवान् हुए। 'श्रीविद्या' पर अनेक ग्रन्थ आपकी ही देन है। उनमें किसी में भी अपना

नाम नहीं जुड़ने दिया । स्वभावत: छिपे ग्रौर ग्रलिप्त रहे । पर, आज इस पावनकृति में ग्रापका चित्र जोड़ रहे हैं—कृतज्ञतापूर्वक ग्रापका नामस्मरण भी कर रहे हैं ।

ग्राप द्वारा प्रणीतग्रन्थों की पाण्डुलिपियां न जाने कहां कहां बिखरी हैं ? कौन किससे पूछे ? सभी तो आपके हैं ग्रौर सभी के आप भी । ग्राशा ही नहीं विश्वास है, कभी न कभी उन कृतियों की ग्रालोक-किरणें समाज को मिलेंगी ही, समय उन सबको प्रकाश में लाएगा ।

आपके परिचय में कुछ कहना अपना ग्रपरिचय ही प्रकट करना है । भला—ग्रापको कौन जान सका ग्रौर कौन जान सकेगा ? जो जानबूझ कर अनजान हो, उसका मौन ही मुखर बनता है । तब, ग्रधिक क्या कहा जाये । ग्रापको पुन: पुन: ग्रनन्त प्रणाम........

—शान्तिस्वरूप ग्रग्निहोत्री

भूमिका

ले०—परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्री १०८ श्रीविद्यारण्यस्वामीजी महाराज

(उपनाम–श्रीमूर्खारण्यजी महाराज)

प्रस्तुतग्रन्थ "यतिदण्डैश्वर्य-विधानम्" भगवान् आद्यशङ्करविरचित एक त्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। आचार्यश्री की उपलब्धकृतियों में यह अबतक ज्ञात था। यह किसी अन्य ग्रन्थ का भाष्य न होकर सर्वथा मौलिक एवं तन्त्र रचना है। जो पिण्ड, ब्रह्माण्ड और दण्ड के रचना-रहस्यों का द्घाटन कर योग और तन्त्र के समन्वित स्वरूप द्वारा अभिनव साधना का थ प्रशस्त करता है। इस ग्रन्थ का श्रीगणेश २६१२ गतिकलि तदनुसार क्रमपूर्व ४३१ में ज्योतिर्मठ में हुआ किन्तु समापन २६१३ गतिकलि में द्रगाढेश्वर (नेपाल) में सम्पन्न हुआ।

भारतीय पुरातन-वाङ्मय में योग और तन्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान । यद्यपि लक्ष्य और उपलब्धि की दृष्टि से दोनों समान हैं, तथापि योग की पेक्षा तन्त्र का लोकपरक पक्ष उसकी अपनी विशेषता है। हमारा तान्त्रिक-ाङ्मय आज खण्डित और विशृंखलरूप में ही उपलब्ध है। अनेक साधक और नीषी आज भी इन लुप्त कड़ियों के अन्वेषण में सतत लगे हुए हैं।

भगवान् आद्यशंकर के आविर्भाव ने भारतदेश को आध्यात्मिक खण्डता प्रदान की। उनका अल्पकालिक जीवन मानवजीवन की बहुमुखी दशाओं के द्वार खोल गया। योग और तन्त्र की दिशा में आद्य शंकर ने जो पलब्धियाँ मानव जाति को प्रदान की हैं वे अत्यन्त दिव्य और पावन हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ "**यतिदण्डैश्वर्यविधान**" की उपलब्धि हिमालय के प्रदेश शेष में हुई। भगवान् आद्यशंकर ने इस ग्रन्थ की रचना भारत में आरम्भ ी थी। उन्हीं दिनों नेपाल यात्रा का प्रसंग उपस्थित होने पर वे नेपाल स्थान कर गये। इस ग्रन्थ की सम्पूर्ति नेपाल-निवास काल में हुई। कालान्तर राजसत्ता की अस्थिरता और देश की पराधीनता आदि अनेक ऐसे कारणों अन्वेषण के अभाव में यह ग्रन्थ अब तक अप्रकट एवं अज्ञात ही रहा।

अपने मूलरूप में यह ग्रन्थ ब्राह्मीलिपि में था। कालान्तर में यह विध लिपियों में रूपान्तरित होता रहा। ब्राह्मीलिपि से यह 'लिच्छवि' लिपि

में आया। तत्पश्चात् अन्य लिपि में रूपान्तरित हुआ। उसी लिपि से वर्तमान रूप में यह ग्रन्थ प्रथमबार देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध हुआ।

आद्यशंकर और नेपाल

आद्यशंकर ने गतकलि संवत् २६१३ में नेपाल की यात्रा की। वे लगभग १ वर्ष नेपाल में निवास कर गतकलि संवत् २६१८ में भारत लौटे। आचार्यश्री के नेपाल आगमन से पूर्व नेपाल के राजा वृषभदेव नवप्रचलित बौद्ध और जैनधर्म से अत्यधिक प्रभावित हो गये थे। फलस्वरूप नेपाल में वैदिक धर्म का ह्रास चिन्तनीय स्थिति में पहुँच चुका था। आचार्यश्री के नेपाल आगमन के पश्चात् ही राजा वृषभदेव पुनः शैव धर्म में प्रतिष्ठित हुए। भगवान् पशुपति-नाथ के मन्दिर एवं अन्य कई दिव्य क्षेत्रों का पुनरुद्धार हुआ। शास्त्रार्थों में अनेक बौद्ध एवं जैन धर्म के आचार्यों का पराभव हुआ। इस आवासकाल में आचार्यश्री द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन भी हुआ जिनमें से आज अधिकांश कालकवलित हो चुके हैं। भगवान् पशुपतिनाथ का पूजा-विधान आज भी आचार्यश्री द्वारा निर्धारित रीति से सम्पन्न हो रहा है।

यह भी उल्लेख मिलता है कि राजा वृषभदेव के कोई सन्तान नहीं थी। आचार्यश्री के आशीर्वाद के फलस्वरूप युधिष्ठिर संवत् २६१४ में उन्हें पुत्र-रत्न की उपलब्धि हुई। राजा ने अपने इस पुत्र का नाम अपने गुरु के आशीर्वाद से प्राप्त प्रसाद के कारण 'शंकरदेव' रखा।

नेपालस्थित स्वयम्भू लिङ्ग ही चैत्य है। सत्ययुग में देवतागण इसका पूजन करते थे। बाणासुर के पुत्र महेन्द्र द्वारा कच्छपासुर के वध के पश्चात् इसकी गोपुच्छ से पूजा होने लगी। सूर्यवंशी राजा वृषभदेव ने जब शैवधर्म का परित्याग कर बौद्धधर्म अपना लिया तो उन्होंने शान्तिशील भिक्षु के निर्देशानुसार इस स्वयम्भूलिंग को गतकलि संवत् २६०० में चैत्य के रूप में परिवर्तित कर दिया। इसके उपरान्त राजा के परामर्श से शान्तिकरवज्राचार्य ने उपर्युक्त पर्वतीय क्षेत्र को समतल कराकर आवासीय भूमि का रूप दिया। जहां आज भी बौद्ध लोगों का प्रमुख आवास है। सूर्यवंशी राजा प्रतापमल के समय में इस क्षेत्र में वसुपुर, वरुणपुर, अग्निपुर, वायुपुर समरपुर नामक पंचपुरी स्थापित की गई।

भगवान् आद्यशंकर के नेपाल आगमन पर उनके प्रभाव से राजा वृषभदेव जब पुनः शैवधर्म में दीक्षित हुए तब आद्यशंकर की प्रेरणा से राजा वृषभदेव के द्वारा उपर्युक्त चैत्य में ही स्वयम्भूलिंग की पुनः प्रतिष्ठा की गई, जो अब तक विद्यमान है।

आद्यशंकर का कालनिर्णय

नेपाल में "यतिदण्डैश्वर्यविधान" की उपलब्धि के साथ-साथ इस रहस्य का भी उद्‌घाटन हुआ कि आद्यशंकर के जन्मकाल के निर्धारण में अब तक भ्रामक आधारों पर निश्चय किया जाता रहा है। नेपाल की शाही वंशावली के आधार पर आद्यशंकर का जन्म आज के प्रचलित विक्रम संवत् के भी पूर्व हुआ था ? उपलब्ध आधारों के अनुसार तात्कालिक गतकलि संवत् २५७८ में नेपाल में राजा वृषभदेव का राज्याभिषेक हुआ। उसके १५ वर्ष पश्चात् आद्यशंकर का जन्म हुआ। द्वापरयुग में ३८ युधिष्ठिर संवत् व्यतीत हो चुकने के उपरान्त कलियुग का प्रारंभ हुआ। गत कलि संवत् २५९३ में युधिष्ठिर संवत् के ३८ संवत्सर व्यतीत हो चुके थे। इस प्रकार युधिष्ठिर संवत् २६३१ में आद्यशंकर का जन्म हुआ। इसी जन्मकाल का उल्लेख आद्यशंकर द्वारा स्थापित मठों में भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार विक्रम संवत् पूर्व ४५१ (वैशाख शुक्ला ५) में आद्यशंकर का जन्म निर्धारित हुआ जो कि ईस्वी सन् के अनुसार ईसा पूर्व ५०८ वर्ष है।

यतिदण्डैश्वर्यविधान का वैशिष्ट्य

यतिदण्ड पर भारतीय वाङ्मय में अभीतक कोई आधिकारिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। यह परम सौभाग्य ही कहा जायेगा कि देश में यतिधर्म को सुसंगठित स्वरूप प्रदान करने वाले भगवान् आद्यशंकर द्वारा स्वलिखित विधान ही उपलब्ध हो गया।

"**यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे**" यह उद्‌घोष सामान्यतया प्राचीन समय से दुहराया जाता रहा है किन्तु पिण्ड में अवस्थित शक्तियाँ किस प्रकार से विराट् ब्रह्माण्ड का अभिन्न अंग बनती हैं और यतिदण्ड ब्रह्माण्ड का स्वरूप किस प्रकार से है, इस रहस्य का उद्‌घाटन इसी ग्रन्थ में उपलब्ध होता है।

योग और तन्त्र का समन्वय

योग में वर्णित विभूतियों का रहस्य इस ग्रन्थ में सजीव नाड़ियों के रूपमें चित्रित किया गया गया है। साधक शरीरस्थ नाड़ी को प्रबुद्ध कर किसी भी विभूति को हस्तामलकवत् प्राप्त कर सकता है। योग में वर्णित सम्पूर्ण विभूतियाँ एक एक सजीव नाड़ी हैं जो कि हमारे अपने ही शरीर में स्थित हैं। इस नाड़ीसमुदाय को आधार बना कर की गई साधना ही "**तन्त्रपथ**" की साधना है। जिस लक्ष्य की उपलब्धि के लिए योगमार्ग कठोर साधना का

निर्देश करता है उसी लक्ष्य की उपलब्धि तन्त्रविधि द्वारा सहज और सरल रूप से प्राप्त की जा सकती है। तन्त्रविधि द्वारा उपलब्ध की गई विभूतियाँ योग की अपेक्षा कहीं अधिक सुगम एवं चिरस्थायी हैं।

प्रतिपाद्य विषय की भावभूमि

आचार्यश्री की कृतियों के पीछे उनकी दो यात्राओं :— कैलाशयात्रा एवं नेपालयात्रा—तथा नेपाल में मां द्वारा तक्र पिलाने वाली घटना का विशेष महत्त्व है।

कैलाश-यात्रा करते हुए आचार्यश्री को भगवान् परशुरामजी के दर्शनों का लाभ हुआ था और उनके अनुग्रह से उन्हें अचिन्त्य रहस्यों की अनुभूति हुई थी। उनके उपदेशानुसार ही आचार्यश्री ने ग्रन्थों का प्रणयन करना प्रारम्भ किया था।

इस यात्राकाल में नेपाल के भातगांव में भगवान् दत्तात्रेय के श्रीविग्रह के दर्शन एवं अर्चा के बाद आचार्यश्री एक शिलाखण्ड पर बैठे थे, वहाँ बैठे-बैठे ही उनकी सहजरूप, से समाधि लग गयी। समाधिस्थ दशा में उन्हें अपूर्व ज्ञान-विज्ञान को उपलब्धि हुई। "यतिदण्डैश्वर्यविधान" जिसका प्रारम्भ उन्होंने विक्रम पूर्व ४३१ में ज्योतिर्मठ में किया था, उसका समापन रुद्रगाढेश्वर (नेपाल) में गत कलि संवत् २६१३ में सम्पन्न हुआ। इस समय आचार्य श्री की अवस्था २० वर्ष की थी जिसे उनके जीवन की उच्चतम प्रौढ़ता का काल कहा जा सकता है।

तक्र पिलाने वाली घटना इस प्रकार है। एक दिन आचार्यश्री को बहुत प्यास लगी। इधर-उधर देखने पर पानी का कोई साधन कहीं भी दिखाई नहीं दिया। प्यास से अधिक व्याकुल होने पर स्वयं माँ ने उन्हें तक्रपान कराया, तक्र पीते ही आचार्यश्री को अद्भुत बोध हुआ और उन्होंने मां की स्तुति इस प्रकार की :—

त्वामेवैकां निगदति वेदः शिवेन साकं नहि ते भेदः।
शिवशक्ति-क्रमविद्या-शिक्षा दातव्येति त्वयि मम भिक्षा ॥
आदिवर्णजनुषोऽतितिक्षोरवतुसतुर्याश्रममयभिक्षोः ।
त्वत्पदयुगले मनोनिवासं, भिक्षामर्पय जननि ! सहासम् ॥

(तारा-पञ्जरिकास्तोत्र)

इसप्रकार भगवान् परशुराम, भगवान् दत्तात्रेय एवं जगज्जननी जगदम्बा के विशेष अनुग्रह के कारण आचार्यश्री ने जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया, प्रस्तुतग्रन्थ भी उन्हीं में से एक है।

विषयवस्तुपरिचय

"यतिदण्डैश्वर्यविधान" की विषय वस्तु को चार पादों में विभाजित किया गया है। विभूतिपाद, तत्त्वपाद, साधनापाद और सिद्धिपाद।

'विभूतिपाद' में दण्डमहिमा एवं दण्ड की आवश्यकता का वर्णन करते हुए दण्ड को प्रणवमात्रा, शिववक्त्राम्नाय, तत्त्वचक्र दिशोपदिशापूर्वक श्रीचक्र के रूप में प्रस्तुत कर, प्राणप्रतिष्ठा एवं न्यास आदि से दण्ड के अलौकिकत्व को प्रदर्शित करते हुए, दण्डवन्दन एवं वन्दन के समय पूजा, तर्पण, अर्घ्यप्रदान आदि वन्दनवेला में करणीय कार्यों का विशद वर्णन किया गया है।

द्वितीयपाद–**'तत्त्वपाद'** में प्रणव के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। प्रणव की मात्राओं का स्वरूप तथा प्रणव के वर्ण, देवता एवं शक्तियों का वर्णन, उनके मन्त्र व ध्यान तथा मात्राओं में आम्नायव्यवस्था (आम्नाय मानव शरीर के छह चक्र हैं वे ही भगवान् शिव के छह मुख हैं) सृष्ट्यादि व्यवस्था कादि, हादि एवं सादि क्रमकूट व्यवस्थाओं का वर्णन यतियों के लिए "साधनापथ" की स्पष्ट दिशा उद्भासित करने की दृष्टि से तत्त्वपाद में अनुस्यूत हैं।

तृतीयपाद–**"साधनापाद"** है। यह पाद इस ग्रन्थ का प्रमुख अंग है। साधना के लिए उसके शरीर एवं उसके अवयवों का ज्ञान परमावश्यक है। अतः इस पाद में शारीरिक रचना का वर्णन करते हुए शरीरस्थ वायुओं का तथा उनके स्थान, वर्ण एवं कार्यों का शरीरस्थ नाड़ियों का तथा उन्हें प्रबुद्ध कर उनसे सुगमतापूर्व कार्य सम्पादन करने की प्रक्रियाओं का, शरीरस्थ चक्रों का तथा उनके माध्यम से किये जाते वाले जप व ध्यान आदि के महत्त्व का, तथा नाद, बिन्दु, योग एवं महारजोवीर्ययोग आदि यौगिक प्रक्रियाओं का विवेचन इस पाद में किया गया है।

चतुर्थपाद–**"सिद्धिपाद"** इस ग्रन्थ का अन्तिम पाद है। इसमें चक्रराज एवं श्रीयन्त्र का विशद वर्णन हुआ है। नवार्णमन्त्र की महिमा का वर्णन करते हुए उसे देवी का स्वरूप ही बतलाया गया है। इसी प्रकार पश्चिम आम्नाय को श्रेष्ठ मानते हुए उसे देवी के सादिकूट का सूचक कहा गया है। षट्चक्रों में विभिन्न मुखों से ध्यान करने का विधान बताते हुए ब्रह्म, इडा, पिंगला और सुषुम्णा आदि नाड़ियों एवं उनके द्वारस्थानों का निरूपण करते हुए अन्त में योगनिरूपण किया गया है जो सिद्धि प्राप्ति का ही स्वरूप है।

यतिदण्डैश्वर्यविधान की पांडुलिपि में कुछ ऐसे पृष्ठ हैं जिनमें दीक्षाक्रम मात्रा का वर्णन एवं 'शरीरस्थचक्राणां नामानि, शिवशक्तिनामानि' आदि विषय हैं। तद्विषयक ग्रन्थों का बाद में शोध करने पर इन विषयों का समावेश **"वड़वानलतन्त्र"** एवं **"प्रपञ्चसार"** आदि अन्य ग्रन्थों में भी पाया गया है।

जिस प्रकार गीता में समस्त वेद, पुराण एवं उपनिषदों का सार निहित है उसी प्रकार "यतिदण्डैश्वर्यविधान" में भी आचार्यश्री द्वारा समस्त निगम एवं आगम के ग्रन्थों में वर्णित शरीररचना, विभिन्न साधना-पद्धतियों एवं तत्सम्बन्धी जप ध्यान आदि प्रक्रियाओं व मुद्राओं का सम्यक् वर्णन सरल एवं सुबोधभाषा में प्रस्तुत किया गया है। अतः यह ग्रन्थ न केवल तद्विषयक अन्यग्रन्थों का सार ही है अपितु उन विषयों के सम्यक् बोध हेतु पथ–प्रदर्शक भी है। वस्तुतः यह ग्रन्थ भारतीय सांस्कृतिक परम्परा एवं गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखनेवाले कतिपय ग्रन्थों में से एक है।

मूलप्रतिपाद्यविषय

इस ग्रन्थ का मूलप्रतिपाद्य विषय है–"**दण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड और श्रीयन्त्र का एकत्व**"। इस दृष्टि से इसमें **"परोक्षप्रिया हि देवाः"** इस नैगमिक और **"संकेतविद्या गुरुवक्त्रगम्या"** इस आगमिक सिद्धान्त को पदे-पदे उजागर होते देखा जा सकता है। दण्ड जैसे प्रतीक में भारतीय मनीषीद्वारा उपलब्ध अध्यात्म, अधिदेव और अधिभूत सम्बन्धी रहस्य ओत-प्रोत हैं। ये साधना की उच्चतम भूमिका में प्रविष्ट कराने की दृष्टि से किस प्रकार उपयोगी हैं, यह सब इस एक ग्रन्थ में इतना स्पष्ट, विशद एवं हृदयग्राहीढंग से प्रतिपादित है कि यह ग्रन्थ इस विषय के ग्रन्थों में शीर्षस्थान पर प्रतिष्ठाप्य है।

विविधखण्डों में विभक्त इस ग्रन्थ में अनेक आध्यात्मिक एवं साधनापरक रहस्यों का उद्घाटन आचार्यश्री ने लोककल्याणार्थ प्रस्तुत किया है। दण्डमूल, दण्डाग्र और मुद्रा में सृष्टि, स्थिति तथा लय का बोधन और प्रत्येक में बारह-बारह तत्त्वों का प्रतिपादन कर आचमन का विधान करते हुए आत्मतत्त्व में परिगणित सांख्यसम्मत चौबीस तत्त्वों और विद्यातत्त्व में परिगणित पुरुष, नियति, काल, याग, अविद्या, कला एवं माया नामक सात तत्त्वों तथा शिवतत्व में परिगणित शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और विद्या नामक पांच तत्त्वों का एकत्र समाहार कर तत्त्वशुद्धि के मन्तव्य को स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार अनाख्या एवं भासा-संस्थितियों का विवेचन तथा आम्नायविषयकमान्यता का प्रतिपादन इस ग्रन्थ के अनूठे उपहार हैं।

चक्रों का वर्णन करते समय आचार्यश्री ने कई विलक्षण रहस्यों को एक साथ निबद्ध कर प्रस्तुत किया है। ऊर्ध्वमुख एवं अधोमुख चक्रों का वर्णन, अभ्युदय के लिए अधोमुख चक्रों की साधना का महत्त्व, निःश्रेयस के लिए समग्र चक्रों की साधना की महत्ता, प्रत्येक चक्र का स्वरूप तथा स्थानविवेचन मातृकाओं की चक्रगत स्थिति का वर्णन, दल एवं बीजों तथा देवताओं का वर्णन तथा प्रत्येक मातृका से सम्बद्ध विशिष्ट वायु का नामोल्लेख आदि सरल एवं सुबोध भाषा में, इस ग्रन्थ में एक साथ सँजोया मिलेगा। इसके अतिरिक्त अधोमुख चक्रों में से किसका ध्यान ऊर्ध्वमुख रूप में किया जाना चाहिए और क्यों ? इसका निर्देश भी इस ग्रन्थ में स्पष्टतया उपलब्ध है। किन-किन चक्रों में जप व ध्यान करने से, जिज्ञासा, आकर्षण शक्ति, बुद्धिविकास, ज्ञानविज्ञान, सिद्धि तथा अपने इष्टदेवता के स्वरूप, ऐश्वर्य, वैभव एवं सामर्थ्य आदि का यथार्थरूप में अनुभव कर साधक किस प्रकार दिव्यता को प्राप्त करता है, यह सब चक्रों के वर्णन में स्पष्ट कर दिया गया है।

मानवशरीररचना में अष्टोत्तरशतचक्रों का उल्लेख भी किया गया है। यथा—

> अष्टोत्तरशते चक्रे, मन्त्रपिण्डाक्षरात्मके।
> द्विशतात्मोंपुनः प्रोक्त उदयः सर्वसिद्धिदः ॥

इन चक्रों को प्रवुद्ध करने के लिए गणपति—अष्टोत्तरशतनाम, सप्तशती में वज्रकवच, शिव के अष्टोत्तरशतनाम एवं दशमहाविद्या, सिद्धमहाविद्या आदि सब के अष्टोत्तरशतनाम मिलते हैं। इन नामों में रहस्यगर्भित नाम हैं। ये सब नाम इन अष्टोत्तरशतचक्रों को प्रबुद्ध करने के लिए महर्षियों ने विशेष अनुकम्पा कर लिखे हैं। देशकाल के कारण समय पाकर इन चक्रों के नाम इनसे सम्बन्धित नहीं रह गये हैं, न इस विषय में कहीं लिखा हुआ ही उपलब्ध होता है। कौनसा नाम कौन से चक्र को प्रबुद्ध करेगा ? इसका ठीक पता नहीं मिलता। यदि इसका यथार्थ बोध हो जाये तो शीघ्र ही चक्रों की क्रिया सम्पादित होने लग जाती है।

त्रिशती और सहस्रनाम प्रायः सभी देवताओं के मिलते हैं। इन सहस्र नामों में विविध प्रकार के प्रयोगों का महत्त्व है। प्रयोग करने पर होता भी है परन्तु यथार्थ प्रक्रिया ज्ञात न होने के कारण प्रयोग नहीं कर पाते। सहस्र नामों की गणना मुखरूप से बतलाई है। यह भी एक रहस्य गर्भित बात है। मुख अग्नि का स्वरूप है। उसमें पड़ा हुआ बीज सम्पूर्ण शरीर को सञ्चालित करता है। सम्पूर्ण शरीर का निर्माण करता है। सहस्रनाम के पाठ के समय

मानव को अग्नि की दस कलाओं का ध्यान करना चाहिए। इन्हीं दस कलाओं से एक-एक कला में सौ-सौ नाम है। वही सहस्रनाम होता है।

अग्नि की कला 'मणिपूर' चक्र में है। मणिपूरचक्र में दश पंखुड़ियाँ हैं। यदि इन्हें ही अग्नि की दश कलाएँ मान ली जायें तो वे ही प्रज्वलित होकर वाष्प बनती हैं। मणिपूरचक्र में ही महारज का निवास स्थान है। यह सङ्केतविद्या है। महारज लाल रंग का होता है। वह अग्नि में जलकर शुद्ध स्फटिक के सदृश हो जाता है। यह जीवन की सर्वोत्तम शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त मानवी शक्ति को बना देता है। यहां से एक नाड़ी मस्तिष्क में अधोमुख पुरुष के मणिपूर से जुड़ी हुई है। इसी कारण आचार्यप्रवर ने मस्तिष्क से गुरु की आज्ञा प्राप्त कर मणिपूर से जप प्रारम्भ करने का निर्देश किया है। इसका विशेष विवरण ग्रन्थ में शारीरिकरचना प्रकरण में, जो जप प्रकार दिया है, उसमें उपलब्ध है।

शरीरगत नाड़ियों के वर्णन के प्रसङ्ग में ८४ नाड़ियाँ प्रमुख हैं। इन चौरासी नाड़ियों में से ७२ नाड़ियों के नाम उपलब्ध हैं। उनके कार्य, उनकी उद्‌भव भूमि, उनके उपयोग आदि का जितना विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ में प्राप्त है उतना अन्यत्र कहीं भी नहीं है। इस ग्रन्थ में सात भागों में विभक्त मस्तिष्क के सम्बन्ध में जो वर्णन उपलब्ध है, उसे साधकजगत् और आयुर्विज्ञानियों के लिए प्रकाशस्तम्भ के समान दिशा निर्देशनकारी मानना होगा। साधना द्वारा इन विभिन्न नाड़ियों को प्रबुद्ध कर साधक कैसे कैसे अलौकिक कार्य सम्पादित कर सकता है तथा विभिन्न यौगिकमुद्राओं की साधनाद्वारा मनुष्य किस प्रकार दिव्य शक्तियों का अपने में आधान कर सकता है, यह सब इस ग्रन्थ में अनुस्यूत कर आचार्यश्री ने मानवजाति के कल्याण का पथ आलोकित किया है।

साधना और नाड़ीविज्ञान—

शारीरिक संरचना में यदि मनुष्य को नाड़ीज्ञान हो जाये तो निमिष मात्र में सम्पूर्ण क्रियाएं साध्य हो जाती हैं। भगवन्नाम जप, विभिन्न प्रकार के मन्त्रों के अनुष्ठान तथा विविध प्रकार की यौगिक नाड़ियों के सम्यक् ज्ञान से ही साध्य होता हैं। जिस क्रिया का साधन करना है, उससे सम्बन्धित नाड़ी पर दबाव डालकर उसे प्रबुद्ध करना यही उसका साधन है। सम्बन्धित स्थान की नाड़ी को प्रबुद्ध कर देने पर दुर्गम एवं दुरुह मार्ग भी सुगमता से साध्य बन सकता है। इस प्रकार मस्तिष्क आदि शरीर के विभिन्न अङ्गों में सूक्ष्मरूप से फैली हुई इन नाड़ियों के सम्यक् ज्ञान से न केवल दूरदृष्टि, दूरश्रवण,

परकाय-प्रवेश एवं मानस परिवर्तित करने की शक्तियों की प्राप्ति भी सम्भव है। रुग्ण अवस्था में सम्बन्धित अङ्गों की चिकित्सा भी सुगमता पूर्वक की जा सकती है। इस ग्रन्थ में सिद्धान्तों की ही चर्चा नहीं है अपितु स्थापित सिद्धान्तों की उपलब्धि का साधनपथ भी निर्दिष्ट है।

तन्त्रागमों में प्रतिपादित काली और सुन्दरी की नित्याओं का तथा काली व सुन्दरी का देहगत नाड़ीसमूह में अभिन्न और अविच्छिन्न सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध क्यों है, तथा उपासनाक्षेत्र में अन्त में काली और सुन्दरी के अभेद में परिणत होने का क्या रहस्य है? यह विवेचन भी इस ग्रन्थ में उपलब्ध है।

शास्त्रों में वर्णित १० आम्नायों का साधनमार्ग प्राप्त होता है। छह आम्नाय सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं। चार आम्नाय दो-दो आम्नायों के योग से बनते हैं। यही १० आम्नाय शारीरिक रचना के अनुसार ऊर्ध्वमुख अधोमुख चक्र कहलाते हैं। हमारी शारीरिक संरचना में १६ आधार बताये गये हैं। प्रत्येक आम्नाय के मूलमन्त्र को १६ भागों में विभक्त करते हैं। उक्त १६ भागों में विभक्तमन्त्र का योगियों द्वारा निश्चित किए हुए १६ आधार स्थानों पर ध्यान एवं मन्त्रार्थविचार करने के साथ साथ मन्त्रचैतन्य के भी अभ्यास के साथ मन्त्र का मनन करने पर एक विशेष प्रकार का स्पन्दन उभरता है और चक्रों का नाद भी सुनाई देने लगता है। प्राणवायु का संघर्ष होने से सम्बन्धित आम्नाय का जो चक्र है वह उस मन्त्र के रूप का अनावर्त बन जाता है। उसी अनावर्त से निकले हुए वायु के संघर्ष से वह वायु मृणाल-तन्तु के समान ब्रह्मरन्ध्र से निकलकर ब्रह्म की ओर चलना प्रारम्भ करता है। वह धीरे-धीरे ब्रह्मरन्ध्र को खोलने लगता है, उस ब्रह्मरंध्र से एक प्रकार की श्वेत वाष्परश्मि का प्रादुर्भाव होता है। जिस प्रकार एक अग्निकण को सूखे तृणों में फूंक देने से अग्नि का समूह बन जाता है। इसके विपरीत यदि उस अग्निकण को उपेक्षा से छोड़ दिया जाये तो वह नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक जीव का उपर्युक्त तन्तु द्वारा ब्रह्मरंध्र के साथ सम्बन्ध है। उस तन्तु को जो सम्भाल सकते हैं, वे तन्तु द्वारा ब्रह्म के साथ एकता प्राप्त कर शिवस्वरूप बन सकते हैं। यदि उसकी उपेक्षा कर दें तो पशुता में ही पड़े रह जाते हैं।

ब्रह्मरंध्र से निकला हुआ श्वेतवाष्प ही ब्रह्मतन्तु है। यह तन्तु प्रत्येक जीव में बहुत सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। यह आश्चर्य की बात नहीं है। अभ्यास की दृढ़ता से सुगमता पूर्वक यह दृष्टिगोचर होता है। इस तन्तु का

ज्ञान जिस वस्तुद्वारा प्राप्त कर लिया जाए, उसी का नाम तन्त्र है अर्थात् एक प्रकार की महान् युक्ति जिससे मनुष्य जीव से शिव बन जाता है। जिस प्रकार घडी में चाबी देने से घड़ी के अन्दर के सभी यन्त्र चलना प्रारम्भ कर देते हैं। चाबी के पूरा होने पर एक यन्त्र चलता है और उसके सहयोगी बहुत से यन्त्र चलते रहते हैं। उसके साथ उसके सहयोगी यन्त्रों का सम्बन्ध जुड़ जाता है तो विविध प्रकार के ज्ञान प्राप्त होते हैं। जो सुगुरु (ऐसा गुरु जो मानवशरीरस्थ नाडियों का विशेषज्ञ हो और दूसरे व्यक्ति की नाड़ियों को भी प्रबुद्ध कर सकने की क्षमता रखता हो।) वे उन्हीं चक्रों को सञ्चालित कर सुप्तनाड़ीविशेष से सम्बन्ध जोड़कर, उसे चैतन्य बनाकर विविध प्रकार के ज्ञान को हस्तामलकवत् कर देते हैं। इसी को "निमेषमात्रेण सुसाध्य एव" कहते हैं।

वैसे तो अभिधान की दृष्टि से इस ग्रन्थ का सारा सन्दर्भ यतियों के लिए है और उनके लिए यह आवश्यक आह्निक कर्त्तव्यों का इसमें स्थान-स्थान पर उल्लेख है, विशेषत: दण्डविषयक सन्दर्भ में। तथापि इसमें कई अन्य रहस्य भी यत्र तत्र स्पष्ट किये गये हैं जो मनुष्यमात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी और अभ्युदयकारक भी हैं।

सामान्य जनजीवन के साधनोपयोगी विषय इस ग्रन्थ में विशेष महत्त्व-पूर्ण हैं। आगमानुसार शारीरिक रचना एवं विशेष नाड़ियों का ज्ञान, काली एवं सुन्दरी कल्पानुसार चक्रों की संख्या, देवता आदि का वर्णन साधनक्रमेण चक्रों को स्वरूप, धमनी[1] नाड़ियों का निरूपण, चक्रस्थ नाड़ियों के नाम, सुषुम्ना-मध्यस्थ नाड़ियों के नाम, दशविध जपक्रम एवं फल तथा चक्रों की स्थानव्यवस्था, बहिर्याग, अन्तर्याग-विधान, शाम्भवक्रम,[2] वीर्यसंरक्षण-प्रक्रिया, एवं औषधि उर्ध्वरेतस्वितासाधन, तद्विषयक विविधमुद्रा, साधकों के कर्त्तव्य, विशेषप्रकार से कुण्डलिनीजागरण विधि आदि विषयों का विशेष महत्त्व है।

कादि एवं हादि कूटों का विवरण यत्र तत्र सर्वत्र प्राप्त हो जाता है, पर सादि-कूट का विवरण इसी ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इस प्रकार आचार्यश्री ने कादि-हादि एवं सादि तीनों कूटों का विवरण प्रस्तुत कर साधकसमुदाय की

---

१. अन्त्यक्रम—

२. प्रत्येक दण्ड वैसे तो सभी चक्रों से परिपूर्ण है किन्तु आम्नायानुसार इनका विशेष सम्बन्ध यहाँ दिखाया गया है।

ग्रन्थियों को उन्मूलित कर दिया है। प्रत्येक मन्त्र का ध्यान, मन्त्रोद्धार और आम्नाय का निर्णय भी दिया है, जो साधकों के हित में अत्यन्त उपयोगी है। इस प्रकार आचार्यश्री ने "साधन पथ" को राजमार्ग बनाते हुए साधकों का गन्तव्य और भी सुलभ कर दिया है।

शरीरस्थदण्ड-परिचय

"यतिदण्डैश्वर्यविधान" के गहन एवं चिन्तन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि शास्त्रों में ५ प्रकार के दण्ड बताये गये हैं[1]। ये १. सुदर्शन दण्ड २. नारायण दण्ड ३. गोपाल दण्ड ४. वासुदेव दण्ड एवं ५. अनन्त दण्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं। दण्ड का यह विधान शरीर रचना के अनुसार है। दण्ड और शरीर अर्थात् शरीरस्थ चक्रों के अनुसार साधन-मार्ग से सम्बन्धित है। इस प्रकार इन दण्डों का शरीरस्थ चक्रों से अभिन्न सम्बन्ध है। सुदर्शन स्वाधिष्ठान से, नारायण अधोमुख-मणिपूर से, गोपाल ऊर्ध्वमुख-मणिपूर से, वासुदेव अनाहत से एवं अनन्त अधोमुख-विशुद्ध चक्र से पूर्ण सम्बन्ध रखता है। वैसे तो अधः एवं ऊर्ध्व सहस्रार भी इनसे सम्बन्धित है, परन्तु इसका प्रमुख स्थान स्वाधिष्ठान ही है।

जिस प्रकार प्रत्येक चक्र से अधः ऊर्ध्व सहस्रार से सम्बन्ध रखने वाली एक नाड़ी चलती है और विभिन्न प्रकार के कार्य सम्पादन करती है, उसी प्रकार दण्ड भी कार्य करता है। यद्यपि वर्तमान ग्रन्थों में इस प्रकार का कोई उपदेश नहीं मिलता परन्तु चिरकाल की साधना के पश्चात् इसका बोध हो ही जाता है। दण्डप्रणाम करने में विभिन्न ग्रन्थियों को स्पर्श कर प्रणाम करने का विधान है। महाभारत आदि को देखने से पता चलता है कि उस समय भी विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दिशाओं के ज्ञान से सम्बन्धित बातों का विशेष ध्यान रखा जाता था। पाण्डवों के वनवास जाते समय उनके साथ धौम्यऋषि नैर्ऋत्य दिशा की ओर कुशा किये हुए नैर्ऋत्याम्नाय के वैदिक

---

१. उपर्युक्त ५ दण्डों की अधिष्ठात्री देवियाँ, देवता तथा योग इस प्रकार हैं—

दण्ड	अधि०	देवता	योग
१— सुदर्शन	— भुवनेश्वरी	— ब्रह्मा	— मन्त्रयोग
२— नारायण	— महालक्ष्मी	— नारायण	— मन्त्र-भक्ति-एकता
३— वासुदेव	— कुब्जिका	— रुद्र	— कर्मयोग
४— अनन्त	— गुह्यकाली	— ईश्वर	— ज्ञानयोग
५— गोपाल	— दक्षिणकालिका	— विष्णु	— भक्तियोग

मन्त्रों का उच्चारण करते हुए चल रहे थे। नैर्ऋत्याम्नाय के वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए नैर्ऋत्यकोण में कुशा करके जाने की फलश्रुति यह हुई कि वन जाते समय उन्होंने जिस राज्यश्री को खो दिया था, लौट कर उसे पुन: प्राप्त किया।[१] इस प्रकार के अनेकों दृष्टान्त ग्रन्थविस्तार के भय से उद्घृत नहीं किये जा रहे हैं। दण्ड-प्रणाम के सन्दर्भ में यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि दण्ड-प्रणाम की विधि गुरुजनों से ही जानी जा सकती है।

मस्तिष्क की विकसित नाड़ियाँ दण्डग्रहण करने पर दण्ड से सम्बन्धित विभिन्न मन्त्रों के जप करने से विशेषरूप से विकसित हो जाती हैं। किन्तु यह आचार्य की कृपा पर निर्भर है। सुदर्शन-दण्ड के ग्रहण करने पर स्वाधिष्ठान के छह पत्र और दण्ड की छह ग्रन्थियों का ऐक्य हो जाता है। यह मन्त्रयोग को प्रकाश में लाने वाला है। साथ ही पूर्वाम्नाय को प्रतिष्ठित करता है। इसी प्रकार श्रीयन्त्र एवं दण्ड का "यतिदण्डैश्वर्यविधान" में ऐक्य बतलाया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि हमारे आचार्यों के मन्त्र-संकेत, यन्त्रसंकेत, तन्त्र-संकेत आदि सभी संकेत रहस्यगर्भित हैं। गुरु-गम्य होने के कारण इनका संकेत किस प्रकार है, यह कहना दुष्कर है। यह सभी यतिदण्डैश्वर्यविधानान्तर्गत विचारों के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

'नारायण' नामक दण्ड अधोमुख-मणिपूर से सम्बन्धित है। अधोमुख मणिपूर पूर्वाम्नाय एवं दक्षिणाम्नाय मिलकर आग्नेयाम्नायात्मक अष्टदल पद्म (स्वाधिष्ठान के छह और मणिपूर के दस पत्र। दोनों को मिलाकर अर्द्ध भाग करने पर अष्टदल हुआ।) के अष्टदल ही दण्ड की अष्टग्रन्थियाँ हैं। पूर्ववत् यह दण्ड आम्नायात्मक एवं श्रीयन्त्रात्मक बनकर भक्तियोग प्रदान करता है। पूर्वाम्नाय का मन्त्रयोग एवं दक्षिणाम्नाय के भक्तियोग के ऐक्य एवं साक्षात्कार से साक्षात् नारायणस्वरूप "नारायण" नाम का दण्ड कहलाता है।

"गोपाल" नामक दण्ड ऊर्ध्व-मणिपूर से सम्बन्धित है। ऊर्ध्व मणिपूर के अधिष्ठातृदेवता भगवान् विष्णु हैं और मणिपूरचक्र की अधिष्ठात्री शक्ति दक्षिण-कालिका हैं। ये दोनों शक्तियाँ स्वयं मिलकर गोपाल कहलाती हैं,

---

१— कृत्वा तु नैर्ऋतान् दर्भान् धीरो धौम्य: पुरोहित:।
सामानि गायन् याम्यानि पुरतो याति भारत।। ८० अ० २२ श्लो०
(अनुद्यूत पर्व)

अर्थात् भगवान् कृष्ण का नाम ही गोपाल है। गोपालदण्ड की दस ग्रन्थियाँ ही मणिपूर के दस दल हैं। साथ ही ये अग्नि की दस कलायें भी हैं। इन सबका ऐक्य होकर गोपाल नाम पड़ा।

"**वासुदेव**" नामक दण्ड अनाहत से सम्बन्धित है। अनाहत के द्वादश दल हैं। वासुदेवदण्ड की द्वादश ग्रन्थियाँ इन्हीं की प्रतीक हैं। यहां पूर्ववत् श्रीयन्त्रात्मक आम्नायात्मक ऐकता का बड़े सुन्दर ढंग से इस ग्रन्थ में विवेचन किया गया है।

"**अनन्त**" नामक दण्ड अधोमुख विशुद्ध चक्र का ही स्वरूप है। अधोमुख विशुद्ध के चौदह दल हैं, जो कि अनन्तदण्ड की चौदह ग्रन्थियों से विभूषित हैं। पूर्ववत् आम्नायात्मक, श्रीयन्त्रात्मक ऐकता प्रतिपादित करता है।

"**श्रीयन्त्र**" का मानवशरीर में स्थित स्वरूप, ग्रन्थों में दो प्रकार से मिलता है। श्रीयन्त्र का एक बिन्दुस्थान स्वाधिष्ठान एवं दूसरे का सहस्रार में है। इसी अनुपात से श्रीयन्त्र का निर्माण हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि दण्ड का निर्माण इसी आधार पर हुआ होगा, क्योंकि श्रीयन्त्र एवं दण्ड की ऐक्यता इस ग्रन्थ से विशेष प्रतीत होती है। वैसे तो इस ग्रन्थ में सहस्रार के बिन्दु से तीन श्रीयन्त्रों का निर्माण होता है[1] एवं स्वाधिष्ठान के बिन्दु से दो श्रीयन्त्रों का निर्माण होता है।[2] इनकी पूजापद्धति, कारिका, देवियों का ध्यान आदि सभी उपलब्ध हैं। इनके नाम हैं सृष्टिपूजा, स्थितिपूजा, लयपूजा एवं अनाख्यापूजा और भासापूजा। इनमें अनाख्या और भासापूजा यतियों के लिए विशेष महत्त्व रखती है। यह विशेषरूप से गुरुगम्य है। यह संकेत-विद्या है। उच्चतम साधना करने के बाद ही स्वानुभवद्वारा ज्ञान प्राप्त होता है।

यतिदण्डैश्वर्यविधान" में "यतिकर्त्तव्यानि" में लिखा है—

"चक्राणां क्रमशो ध्यानं जपनं चिन्तनं तथा।
प्रणवस्य च मात्राणां, शक्तेश्च चिन्तनं खलु ॥ ३१६ ॥
कर्त्तव्यानि षडेतानि यतिभिर्नियतं मुदा।
सम्प्रोक्तक्रमनिर्वाहादैश्वर्यं प्राप्यते ध्रुवम् ॥ ३१७ ॥

१— सृष्टि, अनाख्या और भासा तथा २— स्थिति और संहार।

शौचं स्नानं जपो ध्यानं सुरार्चनं भिक्षाटनम् ।
कर्त्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत् ।। ३१८ ।।[1]

(नृप दण्डवत् अर्थात् गुर्वाज्ञया ।) ये विभूतिपाद के ३१६, ३१७ एवं ३१८ श्लोक द्रष्टव्य हैं ।

साधनपाद में—

भिक्षाटनं जपः स्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम् ।
कर्त्तव्यानि षडेतानि, सर्वथा नृपदण्डवत् ।। २३४ ।।
प्रणवश्च मात्राश्चैव शक्तयो ध्यान······· ।
कर्त्तव्यानि षडेतानि तारमात्रासु चिन्तनम् ।। २३५ ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक उल्लिखित हैं । महारजोवीर्य के योगलक्षण में दिया गया है कि साधकों को इस पर विशेष ध्यान देना चाहिए । यतियों का तो यह प्राण ही है ।

आचार्य पाद ने जो यति एवं साधकों के लिए कर्त्तव्य बतलाया है, यह शास्त्रों का ही अन्वेषण है और शास्त्र एवं आचार्य सम्मत भी है । यहां यही बड़ा सङ्केत है । गोस्वामीजी की उक्ति "आज्ञा सम न सु साहिब सेवा ।" इसी की पुष्टि करती है । "तारमात्रासु चिन्तनम्" अर्थात् प्रणव की मात्राएँ एवं प्रणव की मात्राओं की शक्तियाँ (१६ × १६ = २५६ शक्ति) अर्थात् २५६ क्रमशः ये शक्तियाँ हैं ।

"यतिकर्त्तव्यानि" में लिखे हुए श्लोक उन व्यक्तियों के लिए हैं जो सम्पूर्ण साधनाओं को पूर्ण कर चुके हैं और अपने अनुयायी साधकों को परिपुष्ट एवं उन्नतिशील बनाने के लिए मेधा एवं प्रज्ञा को विकसित करने के लिए बैठकर चिन्तन करते हैं । "रजोवीर्य योग लक्षणम्" में यही विषय पुनः उसी प्रकार उद्धृत है । यह प्रधानतः साधकों के लिए ही है । ये अतिगुह्यतम बातें हैं ।

---

१. स्नानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तसेवनम् ।
भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमं नोपलभ्यते ।। ३ ।।

स्नानं मनोमलत्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
ब्रह्मामृतं पिबेद् भिक्षामेकान्तं द्वैतवर्जितम् ।। ४ ।।

आचार्यपाद के ग्रन्थों में शरीरों का वर्णन मिलता है। ये सङ्ख्या में नौ हैं— मस्तिष्क में तीन, कान और आँख में एक-एक, साथ ही हस्त एवं पाद में दो-दो। इस प्रकार नौ शरीर होते हैं। इन नौ स्थानों में सम्पूर्ण शरीर का वर्णन है। जो एकत्रितरूप में सम्पूर्णशरीर कहलाता है। आज का विज्ञान प्रकृति का अनुकरण कर रहा है परन्तु अभी तक पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सका है। प्रकृति ने जिस मानव घड़ी का निर्माण किया है वह जन्म के समय सञ्चालित होती है और अन्तिम समय में सदैव के लिए बन्द हो जाती है। प्रकृति की प्रेरणा हो जाने पर परिवर्तन भी सम्भव है। इसके लिए गुरुकृपा, ईश्वर-अनुग्रह, शास्त्रकृपा एवं स्वयंप्रयास (मनोयोग) कृपा प्राप्त हो जावे तो सभी कुछ अपनी इच्छानुसार कर सकने में साधक समर्थ हो सकता है। इन सब में अपनी और गुरु कृपा ही प्रधान है। सम्पूर्ण साधन इस "साधनपाद" में वर्णित है; साथ ही सङ्केत भी दिये हैं। यह विद्या है। इसमें वर्णित मन्त्र, ध्यान, विनियोगादि आगमशास्त्र में प्राप्त होते हैं। (इनका संग्रह अलग है) इसमें कई जगह एक ही विषय दो छन्दों में या एक ही श्लोक दो जगह प्राप्त होते हैं। मेरे विचार में दोनों एक नहीं है और न पुनरावृत्ति ही है। दूसरे शरीर और इस शरीर के अलग-अलग वर्णन हैं। जैसे चन्द्रमा की कला "अ" से "अः" तक है परन्तु "अ" कार के बिना दूसरे व्यञ्जनों का उच्चारण नहीं हो सकता। सूर्य की कला में "क" से "भ" तक है जो कि द्वादश हैं इनमें भी "अ" कार के बिना उच्चारण नहीं हो सकता। यदि शतपथब्राह्मण को विचारपूर्वक देखेंगे तो पता चलता है कि सूर्य को प्रकाश करने का ईंधन चन्द्रमा ही देता है इसी प्रकार "अ" कार "क" से "भ" को प्रकाशित करने के लिए शक्ति प्रदान करता है। इसीतरह यह विचार इस ग्रन्थ में दो या तीन बार आया है। विस्तारभय से इसका वर्णन नहीं दे रहा हूँ।

अन्त में अधिक न कहकर केवल इतना ही विनम्र निवेदन है कि भगवान् आद्यशङ्कर की यह दिव्यकृति जो अब तक अज्ञान के अंधेरे में छुपी हुई थी, अध्यात्मपथ के पथिकों का कल्याण करने के लिए प्रकाशित हो रही है। आचार्यश्री की आज तक की उपलब्ध कृतियों में विशिष्ट स्थान रखने वाली "प्रस्थानत्रयी" के भाष्यों के साथ-साथ "यतिदण्डैश्वर्यविधान" का भी अपना विशिष्ट स्थान होगा। साथ ही योग और तन्त्र सम्बन्धी वाङ्मय में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध होगी।

अब अन्त में यह कहना है कि मैंने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ (यतिदण्डैश्वर्य विधान) को नेपालयात्रा के प्रसङ्ग में जब देखा तो मुझे बड़ा आह्लाद हुआ। क्योंकि यह ग्रन्थ अपने विषय का सर्वाङ्गीण, समीचीन निरुपण तो प्रस्तुत करता ही है, साथ ही इससे पूर्व अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध भी रहा है। सबसे विशेष बात यह है कि यह कृति जगद्गुरु भगवान् आद्यशङ्कराचार्य द्वारा रचित है। आद्यशङ्कराचार्य का नाम देखते ही मुझे तत्काल विचार आया कि क्यों न इस ग्रन्थ को किसी शङ्कराचार्य के पीठ से ही प्रकाशित कराया जावे ? इसी विचार से मैंने गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित जगद्-गुरु श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थ जी महाराज को समर्पित कर निवेदन किया कि अब इस ग्रन्थ का सम्पादन, प्रकाशन, मुद्रण आदि का सर्वाधिकार गोवर्धनमठ, पुरी (उडीसा) का ही रहेगा। ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

સમરીતિર્મહાતેજાઃ પરબ્રહ્મ સનાતનઃ।
જયતાજ્જ્ઞાનબોનાથો વેદવેદ્યો મહામતિઃ॥

यतिदण्डैश्वर्यविधानस्य

विषयानुक्रमणिका

१. विभूति-पादः

२. तत्त्व-पादः

३. साधना-पादः

४. सिद्धि-पादः

[illegible]
[illegible]
ankurnagpal108@gmail.com

मङ्गला
चिन्तनम्-१९४
शोधनं श्रीचक्र
पूजनम्-१९७
२००। पूर्वद्वा
उत्तरद्वारार्चन
स्वरूपम्, अङ्ग
म्नायषोढान्या
ऊर्ध्वाम्नायाल
२१४। प्रथ
वरणार्चनम्-
पञ्चमावरण
२३२। दक्षि
स्मरणम्-२३
पश्चिमाम्ना
प्रत्यक्षरं द्वा
दशमहाविद्य
चतुर्दशावरण
नम्-२४७।

१८१
१८२
१८३
१८३
१८४
१८५
१८५
१८६
१८६
१८६
१८६
१८७
१८७
१८७
१८७
१८८

परिशिष्टे पूजापद्धतेर्विषयसूची

अथ महाषोढान्यासस्य विषयसूची

સમરીનિર્ગહાતેઆ: પરફુલ્લ ભગવાન:।
જયતાઽજ્ઞાનકીનાચો વેદવેદ્યો મહામતિ:॥
ankurnagpal108@gmail.com

॥ ॐ नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै ॥

श्रीमदाद्य-शङ्कराचार्य-विरचितं

यतिदण्डैश्वर्य-विधानम्

१. मङ्गलाचरणम् —

प्रणम्य परमात्मानं, सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
यतिदण्डस्य माहात्म्यं, वच्मि संन्यासिनामहम् ॥ १ ॥[1]

२. दण्ड-महिमा —

सुरासुरमनुष्याणां, वज्रास्त्र - शस्त्र - शक्तिवत् ।
निगमागममन्त्राणां, विधानेन प्रतिष्ठितः ॥१७॥
नित्योपासनया सिद्धः, साक्षाद् देवायुधोपमः ।
शास्त्रोक्त-विधिना प्राप्तो, यतिदण्डो विशिष्यते ॥१८॥
विष्णुहस्ते यथा चक्रं, शूलं शिवकरे यथा ।
इन्द्रहस्ते यथा वज्रं, तथा दण्डो यतेः करे ॥१९॥

३. दण्डस्य प्रणवात्मकता —

प्रणवस्य प्रतिकृतिर्दण्डः संन्यासिनां मतः ।
प्रणवोऽस्ति यतः साक्षादद्वैत - ब्रह्मबोधकः ॥२०॥
शब्दब्रह्मात्मना सोऽयं, महानिर्वाणबोधकः ।
परमाद्वैतरूपेण, यस्माद् दण्डे प्रतिष्ठितः ॥२१॥

---

१. प्रथमश्लोकानन्तरं पञ्चदश श्लोका अपठिताः सन्त्यतः श्लोकसङ्ख्याऽग्रे सप्तदश दत्ताऽस्ति । इतोऽग्रेऽपि यत्र यत्र श्लोकानां विलोपो विद्यते तत्र तत्रैव-मेव सङ्ख्यायोगः कृतो विद्यत इति ज्ञेयम् ।

४. दण्डस्य प्रणव-मात्रा शिववक्त्राम्नाय-तत्त्वचक्रं दिशोपदिशापूर्वकं श्रीचक्रात्मकत्वञ्च —

ओङ्कारमात्रा एवात्र, सन्ति शम्भुमुखानि वै ।
शिवाननानि चाम्नाया, आम्नायास्तत्त्वरूपिणः ॥२२॥
तत्त्वान्येव हि चक्राणि, चक्राण्यथ दिशो मताः ।
दिश एवोपदिशो वै, भवन्त्येव न संशयः ॥२३॥
सर्वाण्येतानि संयुज्य, यान्ति श्रीचक्ररूपताम् ।
तस्माच्छ्रीचक्रात्मकत्वं, यतिदण्डस्य वर्णितम् ॥२४॥
तदेवं स्मरणाद् न्यासाद्, भावनात् पूजनात्तथा ।
यतिदण्डो भवेत् साक्षाच्छ्रीयन्त्रात्मक उत्तमः ॥२५॥
चक्रराजप्रतीकोऽयं, दण्डो भवति नान्यथा ।
एतद् बुद्ध्वैव सन्धार्यो, भावना चात्र सिद्धिदा ॥२६॥

५. यतिदण्डे प्रणवादिचक्रान्तानां सर्वेषामैक्यम् —

यतिदण्डे च प्रणवे, मात्रासु प्रणवस्य च ।
शिववक्त्रेषु चाम्नायेष्वथ तत्त्वेषु दिक्षु वै ॥२७॥
विदिशासु तथा श्रीमच्चक्रराजेऽपि सर्वथा ।
न कश्चिद् विद्यते भेदो, भेदकृन्निरयं व्रजेत् ॥२८॥
तारे दण्डे च पिण्डे च, ब्रह्माण्डे यन्त्रराजके ।
न कञ्चिद् भावयेद् भेदं, यतिस्तत्त्वार्थचिन्तकः ॥२९॥
दण्डे पिण्डे च ब्रह्माण्डे, श्रीचक्रे च सरूपताम् ।
ध्यात्वा शुभ–फलावाप्तिर्नाल्पस्य तपसः फलम् ॥३०॥
आम्नायोपाम्नाययुता, सृष्ट्यादिक्रमकल्पना ।
यतिदण्डे विधातव्या, प्रणवादिवदेव हि ॥३१॥
मूलाधारादि - चक्राणां, यथा पिण्डे विभावना ।
कार्या तथैव दण्डेऽपि, षट्चक्राणां विभावना ॥३२॥

श्रीचक्रस्य यथा देहे, क्रियते परिकल्पना।
तथैव कार्या दण्डेऽपि, सर्वदा परिकल्पना ॥३३॥

६. यतिदण्ड-स्वरूपम् —

दृढवंशभवः शुष्कश्चारु - पर्व - विभूषितः।
पवित्रभूमिसम्प्राप्तो, दण्डः संन्यासिनां भवेत् ॥३४॥

७. स्थूलादि-मानम् —

स्यादङ्गुष्ठस्थ - पर्वाढ्या, यतिदण्डस्य स्थूलता।
तथा कनिष्ठान्त्यकृशा, शिखा तस्य प्रकीर्तिता ॥३५॥

८. आकार-विमर्शः —

पादाङ्गुष्ठाच्छिखान्तः स्याद्, गृहीतुर्दण्ड उत्तमः।
तत एव च दण्डः स्याद्, भालं यावच्च मध्यमः ॥३६॥
पादाङ्गुष्ठान्नासिकान्तो, यतिदण्डोऽधमः स्मृतः।
आकृतेरेष नियमः, स्वीकार्यो ह्यथवा पुनः ॥३७॥
हस्तौ प्रसारितौ कृत्वा, मध्यमाङ्गुलियुग्मयोः।
स्पर्शं यावत् प्रलम्बस्तु, यतिदण्डः शुभो भवेत् ॥३८॥
मध्यमोऽनामिकास्पर्शः, कनिष्ठास्पृक् तथाऽधमः।
एवं विचार्य क्रियते, दण्डोऽयं यतिभिः सदा ॥३९॥

९. यतिदण्डस्य प्रकारास्तेषां नामानि च —

पञ्च प्रकारा दण्डस्य, पूर्वाचार्यैः प्रदर्शिताः।
ग्रन्थीनां संख्यया भेदा, भवन्त्येते यथाक्रमम् ॥४०॥
षड्भिः "सुदर्शन" स्तत्राऽष्टभि "र्नारायणो" भवेत्।
"गोपालो" दशकैः प्रोक्तो, "वासुदेवो"ऽथ मास[१२]युक् ॥४१॥
मनु[१४]ग्रन्थिमयो"ऽनन्त"स्तत ऊर्ध्वं न धारयेत्।
पञ्च प्रकारा एवैते, यतिदण्डस्य निश्चिताः ॥४२॥

१०. यतिदण्डस्य त्रयो भागाः —

सर्वेषां यतिदण्डानां, त्रयो भागा भवन्त्यथ ।
ग्रन्थीनां क्रमतस्तेषां, निर्णयो भवति ध्रुवम् ॥४३॥
अधो - मध्योत्तरा भागाः, क्रमशः परिकीर्तिताः ।
स्थूलो भवेदधोभागो, मध्यो मध्यम उच्यते ॥४४॥
उत्तरस्तु कृशस्तस्मादिति संवीक्ष्य गृह्यते ।
नातिस्थूलो नातिकृशो, यतिदण्डो विधीयते ॥४५॥

११. यतिदण्डे मुद्राद्वयम् —

ब्रह्ममुद्रा पशुमुद्रा, नाम्ना मुद्राद्वयं स्मृतम् ।
मुद्रां विना यतो दण्डः, केवलं काष्ठमेव सः ॥४६॥

१२. यतिदण्डे ब्रह्मसूत्र-विचारः —

किञ्चात्र ब्रह्मसूत्राणां, चतुरुत्तर-विंशतेः ।
दण्डसूत्रं भवेदेकमिति संन्यासिनां मतम् ॥४७॥
अष्टादश - द्वाविंशति - सूत्राणामपि भेदतः ।
दण्डसूत्राणि जायन्ते, तीर्थ - वाणी[1] - विभागतः ॥४८॥

१३. ब्रह्मसूत्रमानम् —

त्रिवृत्क्रम - विधानेन, तन्तूनामनुवर्तनात् ।
षण्णवत्यङ्गुलमितं, ब्रह्मसूत्रमिति स्मृतम् ॥४९॥
षडुत्तरैषा नवतिश्चतुर्विंशति – संख्यया ।
गुणिता चेद् भवेत् सङ्ख्या, चतुःखाग्निद्विसम्मिता ॥५०॥
तिथिर्वारश्च नक्षत्रं, तत्त्वं वेदा गुणत्रयम् ।
कालत्रयं हि मासाश्च, ब्रह्मसूत्रे हि षण्णवे ॥५१॥

---

१. तीर्थाश्रम–(इति पाठभेदः)

१४. ब्रह्ममुद्रास्थानम् —

भागद्वयोत्तरं ब्रह्ममुद्रा – स्थानं तु निश्चितम् ।
अथवा नाभिपर्यन्तं, पादाग्राद् दण्डगं भवेत् ॥५२॥

१५. परशुमुद्रास्थानम् —

ब्रह्ममुद्रोत्तरं मुद्रा, परशोस्तु निधीयते ॥५३॥
प्रणवाकारता तस्याः, प्रथिता यतिमण्डले ॥५४॥

१६. ब्रह्ममुद्रा-विधानम् —

अधस्तात् पर्शुमुद्राया, ब्रह्ममुद्रा विधीयते ।
प्रदक्षिणं समावेष्ट्य, दण्डसूत्रैः समन्ततः ॥५५॥
ब्रह्ममुद्रा विधातव्या, चतुरङ्गुलमायता ।
चतुर्थे वलये तत्र, धेनुमुद्रां यथाक्रमात् ॥५६॥
विरचय्य विधातव्या, शङ्खमुद्रापि शोभना ।
ततः प्रणवमात्राख्यां, [1]शेषमुद्रां च शोभिताम् ॥५७॥
विधाय ग्रन्थयेद् ग्रन्थिं, सुदृढां ब्रह्मसूचिकाम् ।
एवं दण्डे विधातव्या, ब्रह्ममुद्रा यथाविधि ॥५८॥
सार्धत्रिवलयाकारं ... ...[2] ॥५९॥

१७. परशुमुद्राविधानम्[3] (परशुमुद्रायाः पटमानं तत्साधनं परशुमुद्रा-निर्माणविधिश्च)—

गृह्णीयान्मसृणं वासः, पूर्वं शुद्धमथाक्षतम् ।
भवेद् यदष्टचत्वारिंशदङ्गुलीमितमायतम् ॥६०॥
स्यात् षोडशाङ्गुलायामं, रञ्जयेत् तत् प्रयत्नतः ।
काषायेणैव रागेण, स दण्डो नियतात्मवान् ॥६१॥
प्राग्विस्तारस्योभयतः, परावृत्य तटद्वयम् ।
तदाष्टाङ्गुलविस्तारं, कुर्यादुभयतः समम् ॥६२॥

१. मुद्राशेषसुशोभिताम् इति पाठा० । २. एतच्चिह्नाङ्कितभागेषु लिखिताः पंक्तयः खण्डिताः सन्ति तस्मात् पठितुं न पारिताः । ३. पर्शु० इति पाठा० ।

ततः पुनर्मध्यतस्तत्, परावृत्य यथायथम् ।
विस्तारमानतः कुर्याच्चतुरङ्गुलशेषितम् ॥६३॥
चतुरङ्गुल ··· ··· ··· त्रि ··· ··· ॥६४॥
यथैवमेकतस्तत् स्यात्, चतुरङ्गुलविस्तृतम् ।
अन्यतश्चाष्टचत्वारिंशदङ्गुलमितं क्रमात् ॥६५॥
अथायामं चोभयतः, प्रकल्प्य चतुरंशकम् ।
एकैकभागं प्रथमं, परावर्त्य प्रयत्नतः ॥६६॥
सप्तधा वेष्टितं कृत्वा, निर्मितं परशोश्चरेत् ।
तत्र त्रिधा विभागाच्च, सा मुद्रा साध्यते सदा ॥६७॥
ततस्तां दण्ड-सूत्रेण, दण्डे संयोज्य यत्नतः ।
विधिवत्तत्र बध्नीयाद्, यतिः श्रद्धासमन्वितः ॥६८॥
··· ··· ··· ··· ··· ॥६९॥
एवं षडङ्गुलायामा, चतुरङ्गुलविस्तरा ।
भवेत् परशुमुद्रैषा, दण्डिनां योगसिद्धिदा ॥७०॥

पाठान्तरम्—

ततश्चतुर्षु भागेषु, स्थापयेत् समतां नयन् ।
उपर्युपरि विन्यस्य, क्रमेणैवं विशुद्धधीः ॥७१॥
पुनः परशुमुद्रायां, त्रिषु खण्डेषु संस्थितम् ।
वासस्तद् दण्डब्रह्माण्डे, संन्यसेच्च यथाविधि ॥७२॥
ततस्तद्दण्डसूत्रेण, बध्नीयात् सुदृढं यतिः ।
यद् भवेद् धारणं युक्तं, तद् धार्यं दण्डिभिः सदा ॥७३॥[1]
··· ··· ··· ··· ···
··· ··· ··· ··· ··· ॥७६॥

१८. सुदर्शनाख्ये यतिदण्डे षडाम्नायभावना —

रस [6] ग्रन्थि - समायुक्ते, यतिदण्डे सुदर्शने ।
प्रति-ग्रन्थि तथा ग्रन्थि-मध्ये तत्र विधानतः ॥७७॥

---

१. इतोऽग्रे त्रयः श्लोकाः पठितुं न पारिताः ।

आम्नायाः परिकल्प्यन्ते, सर्वेऽपि यतिसाधकैः ।
सशक्तिकानां मात्राणां, प्रतिष्ठा च विधीयते ॥७८॥
अधस्तादादिम – ग्रन्थौ, पूर्वाम्नाय उदाहृतः ।
द्वितीयस्यां दक्षिणः स्यात्, तत्रैवाद्याऽथ भावना ॥७९॥
तृतीयस्यां पश्चिमः स्याच्चतुर्थ्यामुत्तरः स्मृतः ।
उपाम्नायाश्च तत्रैषां, मध्ये मध्य उदीरिताः ॥८०॥
उपाम्नाय - समष्टिश्च, पञ्चम्यां यतिभिः स्मृता ।
ऊर्ध्वाम्नायस्तथा प्रोक्तः, षष्ठ्यां ग्रन्थौ विचक्षणैः ॥८१॥
एवं सुदर्शनो दण्डो, [1]सर्वाम्नायैर्विभूषितः ।
यतिहस्ते धृतो नित्यं, धर्मरक्षण-सक्षमः ॥८२॥

१९. सुदर्शनाख्ये यतिदण्डे श्रीचक्रभावना —

श्रीचक्रकल्पना दण्डे, यथा संसाध्यतेऽथ सा ।
प्रोच्यते क्रमशः षट्सु, ग्रन्थिषु प्रतिपादिता ॥८३॥
अधःस्थायामाद्यग्रन्थौ, भूपुरं च त्रिवृत्तकम् ।
षोडशारं नागदलं, भावयेद् यतिसाधकः[2] ॥८४॥
द्वितीयस्यां च मन्वस्र - दशारयुगलं तथा ।
तृतीयस्यामष्टकोणं, त्रिकोणं च विभावयेत् ॥८५॥
श्रीचक्रे प्रथमो बिन्दुः, पञ्चदश्यात्मको भवेत् ।
ग्रन्थौ चतुर्थ्यां क्रियते, तस्य नित्यं विभावना ॥८६॥
द्वितीयस्तत्र बिन्दुर्योऽनाख्यात्मक उदाहृतः ।
पञ्चम - ग्रन्थि-मध्ये तु, कर्तव्या तस्य भावना ॥८७॥
तृतीयस्तत्र यो बिन्दुर्भासात्मक उदाहृतः ।
षष्ठ्यां ग्रन्थौ विधातव्या, यतिभिस्तस्य भावना ॥८८॥

---

१. दशाम्नायैः । पा०

२. पाठान्तरं— 'साधको यतिः' ।

द्वि-चतुः-षडष्ट-दश-कूटानां समयात्मिका ।
राशि[१२] संख्यक-कूटा च, मनु[१४] संख्यान्विता ततः ॥८९॥
तथा षोडशकूटाख्या, महात्रिपुरसुन्दरी ।
निर्वाणविद्याऽप्यत्रैव, न्यस्तव्या सिद्धिदायिनी ॥९०॥

२०. विश्वधर्मस्य रक्षाकृच्छ्रीयन्त्रस्यात्र भावना —

विश्वधर्मस्य रक्षाकृच्छ्रीयन्त्रस्यात्र भावना ।
सुप्रतिष्ठा च कर्तव्या, शक्तियुक्तस्य साधकैः ॥९१॥
ऐश्वर्ययुक्त - ब्रह्मत्व - प्रदातुश्च विभावना ।
कर्तव्या ब्रह्ममुद्रायां, श्रीयन्त्रस्य तथैव हि ॥९२॥
परैश्वर्यस्य सदनं[१], जयप्राप्तिकरं च यत् ।
श्रीयन्त्रपर्शुमुद्रायां, भावनीयं हि तत् सदा ॥९३॥
श्रीसुदर्शनदण्डस्य, षट्सु ग्रन्थिषु नित्यशः ।
षडाम्नायगतान् न्यासान्, महाषोढात्मकाँश्चरेत् ॥९४॥
अर्चनापेक्षया न्यासा, विशिष्यन्ते सदैव हि ।
तस्मान् न्यासाः प्रकर्तव्या, भक्तिशक्तिसुखाप्तये ॥९५॥

२१. नारायणाख्ये यतिदण्ड आम्नायभावना —

अष्टग्रन्थि - समायुक्ते, दण्डे नारायणाह्वये ।
चतुर्थ - ग्रन्थि - पर्यन्तमाम्नायाः पूर्ववत् स्थिताः ॥९६॥
पञ्चम्यां नैर्ऋत्याग्नेयावाम्नायौ भवतस्तथा ।
षष्ठ्यामीशानवायव्यावाम्नायौ स्थितिशालिनौ ॥९७॥
उपाम्नायसमष्टेस्तु, सप्तम्यां क्रियते स्थितिः ।
ऊर्ध्वाम्नायस्तथाऽष्टम्यां, ग्रन्थौ संस्थापितो भवेत् ॥९८॥

२२. नारायणाख्ये यतिदण्डे श्रीचक्रभावना —

श्रीयन्त्रस्थितिरप्यत्र, पूर्ववत् समुदाहृता ।
षष्ठ्यां ग्रन्थौ परो बिन्दुः, प्रथमं स्थितिरिष्यते ॥९९॥

---

१. 'दमन' मिति पाठा०

सप्तमाष्टमग्रन्थ्योस्तु, शिष्टं बिन्दुद्वयं स्थितम् ।
विद्यानां चापि संस्थानमन्त्यग्रन्थौ विभावयेत् ॥१००॥
मुद्रयोस्तु तथैव स्याद्, यन्त्रयोरथ भावना ।
एवं सम्भावयेद् भक्त्या, दण्डे नारायणाभिधे ॥१०१॥

२३. गोपालाख्ये यतिदण्ड आम्नायभावना —

दशग्रन्थिमये दण्डे, गोपालाख्ये क्रमादिह ।
अधरः प्रथमग्रन्थौ, पूर्वाम्नायो द्वितीयगः ॥१०२॥
आग्नेयश्च तृतीयस्यां, चतुर्थ्यां दक्षिणः स्मृतः ।
पञ्चम्यां नैर्ऋतः षष्ठ्यां, पश्चिमाम्नाय इष्यते ॥१०३॥
वायव्यः सप्तमीसंस्थोऽष्टम्यामुत्तर एव च ।
ईशानस्तु नवम्यां स्याद्, दशम्यामूर्ध्वसंस्थितिः ॥१०४॥
उपाम्नायसमष्टिश्च, सहैवात्र विभाव्यते ।
एवमाम्नायदशकं, गोपाले भावयेद् यतिः ॥१०५॥

२४. गोपालाख्ये यतिदण्डे श्रीचक्रभावना —

श्रीचक्रभावनायान्तु, गोपाल-ग्रन्थिषु क्रमात् ।
भूपुराद् बिन्दुपर्यन्तं, स्थितिर्भवति निश्चितम् ॥१०६॥
दशम्यामेव ग्रन्थौ च, शिष्टं बिन्दुद्वयं भवेत् ।
विद्यानामपि संस्थानमन्त्य-ग्रन्थौ विभावयेत् ॥१०७॥
मुद्रयोस्तु तथैव स्याद्, यन्त्रयोरथ भावना ।
एवं सम्भावयेद् भक्त्या, दण्डे गोपाल-संज्ञके ॥१०८॥

२५. वासुदेवाख्ये यतिदण्ड आम्नायादि-भावना —

द्वादशग्रन्थिसंयुक्ते, वासुदेवाभिधेयके ।
दण्डे गोपालवत् सर्वेऽप्याम्नायाः सन्ति संश्रिताः ॥१०९॥
उपाम्नायसमष्टिस्तु, परं सा दशमी स्थिता ।
एकादश्यां ततो ग्रन्थावूर्ध्वाम्नाय उदाहृतः ॥११०॥

द्वादश्यां च तथा ग्रन्थावधरोऽप्यस्ति संस्थितः ।
एवमाराध्य सततं, यतिः सिद्धिधरो भवेत् ॥१११॥

२६. वासुदेवाख्ये यतिदण्डे श्रीचक्रभावना —

श्रीचक्रभावना दण्डे, वासुदेवाभिधे मता ।
गोपालदण्डवद् ग्रन्थिदशके तु भवेत् समा ॥११२॥
एकादश्यां ततो ग्रन्थौ, द्वितीयो बिन्दुरिष्यते ।
बिन्दुस्तृतीयो द्वादश्यां, विद्याभिः सह संस्थितः ॥११३॥
एवं द्वादश-ग्रन्थीनां, मध्ये सम्भाव्य भक्तितः ।
वासुदेवाभिधं दण्डं धारयेद् यतिरुत्तमः ॥११४॥

२७. अनन्ताख्ये यतिदण्ड आम्नायादि-भावना —

चतुर्दशग्रन्थिमये, दण्डेऽनन्ताभिधे पुनः ।
वासुदेव इवैवात्र, ग्रन्थिषु प्रोक्तसंस्थितिः ॥११५॥
त्रयोदश्यां तु तत्रैव, गुर्वाम्नाय उदाहृतः ।[1]
चतुर्दश्यां च सर्वेषां, समष्टिं भावयेद् यतिः ॥११६॥
एवं साम्नाय-संस्थित्या, भावना सिद्धिदायिनी ।
यतीनां परमोत्कृष्ट-तपस्तेजःप्रकाशिका ॥११७॥

२८. अनन्ताख्ये यतिदण्डे श्रीचक्रभावना —

श्रीचक्रभावनाऽप्यस्मिन् दण्डेऽनन्ताह्वये ततः ।
पूर्ववद् यतिभिः कार्या, द्वादशीं यावदुत्तमा ॥११८॥
त्रयोदश्यां च निर्वाण-विद्यां सम्भावयेत् पुनः ।
चतुर्दश्यां पाशुपतं मनुमुच्चार्य चिन्तयेत् ॥११९॥
एतयोरेव कूटानां, चतुर्दश्या समन्विता ।
कलाकूटात्मिका चैव, महाषोडश्युपास्यते ॥१२०॥
सप्तकोटि - महामन्त्रस्तथाऽन्या मन्त्रशक्तयः ।
भावनीया सदा भक्त्या, यतिभिः साधकोत्तमैः ॥१२१॥

---

१. आश्रमतीर्थसरस्वतीरूपाम्नायेषु स्वगुर्वाम्नाय इति ।

अन्त्यग्रन्थौ तु मन्त्राणां, शिष्टाः कूटादिभावनाः ।
सुदर्शनसमाः कार्याः, षोढान्यासादयस्तथा ॥१२२॥

२९. यतिदण्डे ब्रह्मसूत्रं तन्तुसङ्ख्यानां श्रीयन्त्रावरणदेवतात्वञ्च —

यतिदण्डे ब्रह्मसूत्रतन्तु-संख्या तु या स्मृता ।
चतुःखाग्नि-द्विप्रमिता, साऽस्ति सच्छास्त्रसम्मता ॥१२३॥
सा च प्रणवमात्राभिर्भक्ता षट्पञ्च-वीक्षणैः ।
नवावशेषा भवति, सङ्ख्यया नैतदद्भुतम् ॥१२४॥
श्रीचक्रस्यावरणगाः, स्मृता या नव देवताः ।
ता एव दर्शिताः सम्यग्गता या दशसंख्यया ॥१२५॥
नवावरणान्युक्तानि, श्रीचक्राभ्यन्तरेऽपि च ।
बिन्दूनां गणना नास्ति, तेष्वावरणकेषु च ॥१२६॥
यतो बिन्दौ भवत्येव, मूलदेवस्य संस्थितिः ।
सोऽप्यावरणरूपेण, परिणतो भवेत्ततः ॥१२७॥

३०. श्रीचक्रात्मकाम्नायस्य स्वरूपम् —

पूर्वाम्नाय-बिन्दुरूपं, षट्कोणं दक्षिणं स्मृतम् ।
अष्टपत्रं पश्चिमस्योत्तरं षोडशच्छदम् ॥१२८॥
ऊर्ध्वत्रिकोणरूपं स्यात्, पातालं च त्रिवृत्तकम् ।
[1]पराम्नायं च वलय-द्वयरूपं ततः परम् ।
आनन्दो भूपुरस्यैकं, रहस्यं वलयद्वयम् ॥१२९॥

प्रसङ्गादाम्नायगोत्राणां शाखानाञ्चापि निर्देशः —

पूर्वस्य चाजनी गोत्रं मानसी दक्षिणस्य च ।
विभावरी पश्चिमस्याद्भुतमुत्तरकस्य च ॥१३०॥

---

१. यद्यपि षडाम्नाया एव प्रसिद्धाः, तथाप्यनुत्तराम्नायस्यापि केषाञ्चिन्मत उक्तत्वादत्र तस्यैवानन्दरूपतां पराम्नायस्योपाम्नायरूपतां रहस्यस्य च समष्टिरूपताञ्चावधार्य कारिका द्रष्टव्या । इदं सर्वमागमरहस्यतः कौलसर्वस्वतश्च ज्ञेयम् ।

ऊर्ध्वस्य जलया गोत्रं पातालस्य च श्यामला ।
मातङ्गिनी पराख्यस्यानन्दस्य स्याज्जलन्धरी ॥१३१॥
रहस्यस्य निजं गोत्रं क्रमाज्ज्ञेयं च देशिकैः ।
पूर्वे सामन्तिनी शाखा दक्षिणे च मनोन्मनी ॥१३२॥
पश्चिमे यक्षिणी शाखा चोत्तरे कालिका स्मृता ।
ऊर्ध्वे सौभाग्यशाखा स्यात् पाताले शीतला भवेत् ॥१३३॥
मनस्विनी पराम्नाये ह्यानन्दे शृङ्गिनी मता ।
रहस्यं च पराख्या स्यादिति शाखाविनिर्णयः[2] ॥१३४॥
विशुद्धौ डाकिनी देवी, अनाहते तु राकिणी ।
लाकिनी मणिपूरस्था, काकिनी लिङ्गगोचरे ॥१३५॥
आधारे साकिनी देवी, आज्ञायां हाकिनी तथा ।
याकिनी ब्रह्मरन्ध्रस्था, सर्वकामफलप्रदा ॥१३६॥

३१. दण्डे मूलाधारादि-चक्रकल्पना —

मूलाधारस्तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम् ।
अनाहतं विशुद्धं च तथाज्ञेति स्मृतानि षट् ॥१३७॥
मूलाधारादिचक्राणि, दण्डे सङ्कल्प्य देहवत् ।
कार्या तत्तद्देवतानां, यतिभिस्तत्र भावना ॥१३८॥
किं वा देहस्थचक्रेषु, कृत्वा सम्यगुपासनम् ।
दण्डे विचिन्तयेत् पश्चाद्, यतिस्तेषां तदात्मताम् ॥१३९॥
स्थूल-सूक्ष्म-लिङ्ग-भेदैस्त्रिधाऽयं देह उच्यते ।
त्रिष्वप्येतेषु चक्राणि, कल्प्यन्ते योगिभिः पृथक् ॥१४०॥

३२. पृथ्व्यादिकल्पना —

स्थूले पृथ्व्यादि-तत्त्वानि, प्रकल्प्यन्ते यथाक्रमम् ।
किन्तु तत्र भवेदीषद्, भेदः सोऽपि विचार्यताम् ॥१४१॥

---

२. रहस्ये च स्वयम्भूः स्यादिति शाखाविनिर्णयः ।
—इति कौलसर्वस्वे पाठः ।

मूलाधारे मही तत्र, मणिपूरे जलं तथा ।
स्वाधिष्ठाने भवेद् वह्निरित्यवस्थाविशेषतः ॥१४२॥

३३. प्रणवमात्राणां कादिमतेन दीक्षा-विचारः —

अथ चादौ गुह्यकाली, भुवना कुब्जिका ततः ।
दक्षिणा कालिका तारा, श्रीविद्या परमेश्वरी ॥१४३॥
महाकाली महालक्ष्मीर्महापूर्वा सरस्वती ।
ततस्त्रिशक्तिचामुण्डा, भद्रकाली*-स्वरूपिणी ॥१४४॥
ध्येया पश्चात् कुब्जिकायां, समष्ट्यालयगामिनी ।
लघुक्रमोऽयं देवेशि चामुण्डाया नवार्णगः ॥१४५॥
कामादि-दोषरहिताः, कादि-हादि-मतानुगाः ।
वाञ्छिता कल्पिता सिद्धिर्मनोरथमयी तथा ॥१४६॥
नैष्ठिकीं ब्रह्मचर्यस्य, दीक्षां लब्ध्वा तु नैष्ठिकः ।
ओङ्कारमात्राणां कुर्यात्, पुरश्चरणमुत्तमम् ॥१४७॥
ततः संन्यस्य विधिवद्, मेधादीक्षां लभेत सः ।
संन्यासाश्रमके पश्चाद्, महामेधा प्रदीयते ॥१४८॥
महासाम्राज्यदीक्षा च, तत एवाभिजायते ।
एषैव दिव्यसाम्राज्य-दीक्षाऽपि विनिगद्यते ॥१४९॥
यतीनामेव यत्रास्तेऽधिकारः केवलं भुवि ।
महासाम्राज्यदीक्षाया, लोके परतरं न हि ॥१५०॥
न न्यासः पूजनं नैव, नियमो नापि विद्यते ।
केवलं धारणान्मुक्तिर्मन्त्रोच्चाराच्छिवो भवेत् ॥१५१॥
यदि संन्याससम्प्राप्तिः, पूर्वमेव कृता भवेत् ।
तदापि शक्तिसम्प्राप्त्यै, दण्डे पिण्डे च सिद्धये ॥१५२॥
पुरश्चरणमाचर्यं, तदनन्तरमेव हि ।
विश्वे धर्मस्य रक्षायां, सामर्थ्यं लभते यतिः ॥१५३॥

---

* कालीकल्पे भद्रकाली । श्रीकल्पे च—उग्रचण्डाऽस्ति ।

निग्रहानुग्रहशक्तिश्च, तदैवायाति नित्यशः ।
अयमेवोत्तमः पक्षो, द्वितीयः प्रोच्यतेऽधुना ॥१५४॥
ओङ्कारमात्राशक्तीनां, मन्त्राणां विधिवद् यतिः ।
संन्यस्तोऽप्याश्रमाचारात्, पुरश्चर्यामथाचरेत् ॥१५५॥
ओङ्कारदीक्षा संन्यासे, दीयते यद्यपीह सा ।
तथापि तद्वत् सुगुणा नागच्छन्ति तया विना ॥१५६॥
पुरश्चर्यानन्तरं हि, दीक्षा मेधात्मिका मता ।
महामेधादयश्चाग्रे, क्रमशोऽथ भवन्ति हि ॥१५७॥
तदा यतिः स्वकर्मभ्यो, मुक्त एव न संशयः ।
ततः स्मरणमात्रेण, शिवरूपो भवेद् यतिः ॥१५८॥
पुरश्चर्यास्वशक्तश्चेद् दण्डे स्वे भक्तिपूर्वकम् ।
प्रणवस्याथ मात्राणां, शक्तीनां च विशेषतः ॥१५९॥
नाम्नामेव सदा कुर्वन् स्मरणं श्रद्धयान्वितः ।
तदैव फलमाप्नोति, भक्तिमान्नात्र संशयः ॥१६०॥

३४. साधना-सिद्धये प्राणप्रतिष्ठाया आवश्यकत्वम् —

एवमुक्तविधानेन, दण्डानां ग्रन्थिवत्क्रमात् ।
आम्नायात्मक-शक्तीनां, परिवृत्त्यासहर्निशम् ॥१६१॥
ओङ्कारमात्रारूपस्य, श्रीचक्रस्य विधानतः ।
प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या, साधनासिद्धये मुदा ॥१६२॥

३५. यतिदण्डस्य स्वरूपचतुष्टयम् —

स्थूलं सूक्ष्मं कारणं च, कारणातीतमेव च ।
चतुर्धाऽत्र स्वरूपं तु, दर्शितं मुख्यरूपतः ॥१६३॥
स्थूले तु ग्रन्थयस्तत्र, पर्शुमुद्रा च सूक्ष्मके ।
कारणे ब्रह्ममुद्राऽन्ते, प्रणवात्मकता मता ॥१६४॥
सेयं सङ्केत-विद्याऽस्ते, गुरुदेवप्रसादतः ।
पूर्णरूपेण ज्ञातव्या, भक्त्या च श्रद्धया सदा ॥१६५॥

तदेवं करणाद् दण्डः, श्रीचक्रात्मक उत्तमः ।
सर्वशक्तिसमायुक्तो, भवत्येव न संशयः ॥१६६॥
सृष्टि-स्थिति-लयानाख्या-भासारूपा अपि श्रिताः ।
भवन्त्यन्तर्गताःसर्वे, दण्डे सूत्रे च मुद्रयोः ॥१६७॥

३६. यतिदण्डस्य प्रतिष्ठाया आवश्यकता —

प्रतिमासु यथा प्राण-प्रतिष्ठा क्रियते बुधैः ।
तथैव कार्या दण्डेऽपि, प्रतिष्ठाविधिपूर्विका ॥१६८॥

३७. प्रतिष्ठायाः फलानि —

तासां प्रतिष्ठा कर्तव्या, दण्डे शास्त्रविधानतः ।
प्रतिष्ठयाऽनया दण्डे, प्रभावातिशयोद्भवः ॥१६९॥
चमत्कार-विशिष्टायाः, शक्तेश्चानुभवो भवेत् ।
विश्वधर्मस्य रक्षायां, समर्थः स्यात् क्षितौ यतिः ॥१७०॥

३८. प्रतिष्ठा-न्यासादिभिरेव यति-दण्डस्याद्भुतत्वम् —

प्रतिष्ठान्यासपूजादिकार्यं संन्यासिना ध्रुवम् ।
तथैव मुद्रयोर्नित्यं, ग्रन्थिर्देया महात्मभिः ॥१७१॥
आम्नाय-नायिकामन्त्रैः, सर्वैरेवानुपूर्वशः ।
ततः सञ्जायते दण्डः, श्रीचक्रसदृशोऽद्भुतः ॥१७२॥

३९. प्रतिष्ठायास्त्रयः प्रकाराः —

त्रिवृत् प्रतिष्ठा गदिता, शास्त्रेषु नियमान्विता ।
प्रथमा तत्र मूर्तीनां, यन्त्राणां वा स्थिरा मता ॥१७३॥
मन्दिरादिषु तस्यां तु, नाह्वानं न विसर्जनम् ।
शयनोत्थापने स्यातां मुद्राभ्यां नित्यमेव हि ॥१७४॥
द्वितीया नित्यपूजा या पर्वपूजादिके भवेत् ।
नित्याह्वानं विसृष्टिश्च, तत्र स्यातां परं तदा ॥१७५॥
आह्वानं हृदये कृत्वा, पूजयित्वा विधानतः ।
पूजान्ते हृदि विश्रामो, दीयते साधकोत्तमैः ॥१७६॥

तृतीया धारणार्थं ये, यन्त्र-मूर्त्यादयो वृताः । ४२.
तेषां प्रतिष्ठा भिन्नाऽस्ति, पूर्वोक्ताभ्यां विशेषतः ।।१७७।।
इयं प्रतिष्ठा नैकस्मिन्, दिन एव समाप्यते ।
सूक्ष्मरूपेण यदि चेद्, भवेन्नवदिनात्मिका ।।१७८।।
बृहद् रूपेण यदि चेत्, क्रियते तर्हि तत्र सा ।
[४०] प्रमितैर्दिनैः संयाति, शास्त्ररीत्या प्रपूर्णताम् ।।१७९।।
इति निश्चित्य दण्डेऽपि, प्रतिष्ठा शास्त्रसम्मता ।
यतिभिः सर्वदा कार्या, धर्म-कर्म—विशारदैः ।।१८०।।

४०. यतिदण्डस्य प्रतिष्ठायाः फलानि —

एवं यः कुरुते दण्डी, क्रियाः सर्वा विधानतः । ४३.
स भवेद् देवतातुल्यः, परब्रह्मस्वरूपभाक् ।।१८१।।
महाषोढान्यासयुक्तस्तथा तत्कवचावृतः ।
यतिर्न कञ्चित् प्रणमेद्, नित्यं स्वं रूपमास्थितः ।।१८२।।
इत्थमैश्वर्य-युक्तोऽपि, निग्रहानुग्रहक्षमः ।
निर्ममो निरहङ्कारः, संन्यासी विचरेद् भुवि ।।१८३।।
ऐश्वर्यं बाधकं प्रोक्तं, मुमुक्षूणां तु यद्यपि ।
तथापि दण्डसंस्कारात्, पुरश्चर्या-विधानतः ।।१८४।।
ऐश्वर्यं स्वयमुत्पन्नं, बाधकं न भवेद् यतेः ।
किन्तु साधकमेव स्याद् नित्यं तस्योर्ध्वगामिनः ।।१८५।।
पतनाद् वारयेच्चापि, निरुन्ध्याद् वा विमार्गतः ।
तथा शारीरधातूनां, रक्षकं तद् भवेद् यतेः ।।१८६।।
ओजस्तेजो धृतिं चैव, समुत्पाद्य प्रभावतः ।
प्रत्युत्पन्नां मतिं दद्यात्, तदैश्वर्यं सदा यतेः ।।१८७।।

४१. प्रतिष्ठाऽभावे दण्डस्य-प्रदर्शनमात्रत्वम् —

प्रतिष्ठा प्रणवस्यापि, मात्राणां शक्तयस्तु याः ।
तासां यदि प्रतिष्ठा नो, दण्डं तद् दृश्यमेव हि ।।१८८।।

ankurnagpal108@gmail.com

४२. विधिवत्साधित-दण्डधारणस्य फलानि —

एवं दण्डस्य माहात्म्यं, विधानं साधनाः क्रियाः ।
सर्वं ज्ञात्वा यतिः कुर्याद्, विधिवद् दण्डधारणम् ।।१८९।।
विधिना विहितं कर्म, कृत्वा सच्छ्रद्धयान्वितः ।
अनन्तशक्तिसम्पन्नोऽनन्तदेव-प्रतिष्ठितः ।
अनन्तानन्तपुण्यानां, सारभूतः सनातनः ।।१९०।।
यथाऽऽस्ते यतिदण्डोऽयं, तथा दण्डधरो भवेत् ।
तदा तद्धारणं लोके, सफलं भवति ध्रुवम् ।।१९१।।

[अत्राग्रे केचन श्लोकाः पठितुं न पारिताः अत एव तेषां क्रमसंख्याऽपि न योजिता]

४३. दशचक्रेषु जपक्रमः कुण्डलिनी-रूपेण चक्रचिन्तनं च —

गुरोराज्ञां समादाय, मणिपूर-सरोजके ।
दशधा प्रजपेद् विद्यां, सावधानेन चेतसा ।।१९२।।
मूलाधारं समेत्याथ, प्रजपेद् दशधा मनुम् ।
मूलाधारादथाज्ञायामागत्य दशधा जपेत् ।।१९३।।
आज्ञाचक्राद् विशुद्धाख्ये, जपेद् दश समाहितः ।
विशुद्धादग्रतो गत्वा, दशधा प्रजपेन् मनुम् ।।१९४।।
स्वाधिष्ठानात् समेत्याऽनाहतं तत्र जपेद् दश ।
द्वौ द्वौ सम्मेलयेत् तेन, भवेत् कोणचतुष्टयम् ।।१९५।।
तत्र नैर्ऋत्यमाश्रित्य, वायव्यान्तं प्रपूजयेत् ।
मोहिनी मातङ्गी सरस्वती पश्चिमदिग्गता ।।१९६।।
दक्षिणस्यामुग्रया च, युज्यते जायते तदा ।
नैर्ऋत्याधिष्ठातृकैषा, चामुण्डेति निगद्यते ।।१९७।।
लोके त्वेषा महामाया, भद्रकालीति गीयते ।
पूर्वस्था कमलादेवी, बगला याम्यदिग्गता ।।१९८।।
संश्लिष्टाऽऽग्नेयकोणस्य, महालक्ष्मीर्निगद्यते ।
पूर्वस्था सिद्धलक्ष्मी च, पञ्चवक्त्रा तथोत्तरा ।।१९९।।

मिलित्वा दशवक्त्राऽथ, महाकालीति कथ्यते ।
प्रतीच्याश्चण्डमातङ्गी, छिन्नमस्ता तथोत्तरा ॥२००॥
वायव्यस्य मिलित्वा च, महासरस्वती ननु ।
एतास्तु लम्बिकायां वै, पूजनीया विधानतः ॥२०१॥
बिन्दौ नवार्णमन्त्रं च, पूजनीयं प्रयत्नतः ।
... ... ॥२०२॥
षट्त्रिंशदङ्गुलो हंसः, प्रयाणं कुरुते बहिः ।
सव्यापसव्यमार्गेण, प्रयाणात् प्राण उच्यते ॥२०३॥
अपानः कर्षति प्राणं, प्राणोऽपानं च कर्षति ।
सोऽहं हंसः पदेनैव, जीवो जीवति सर्वदा ॥२०४॥
शिवादि-कृमि-पर्यन्तं, प्राणिनां प्राणवर्तनम् ।
निःश्वासश्वासरूपेण, मन्त्रोऽयं वर्तते प्रिये ॥२०५॥

४४, कुण्डलिन्यादिक्रमैश्चक्रचिन्तनानि[1] —

चिन्तनं प्रथमे चक्रे, कुण्डलिक्रम उच्यते ।
द्वितीये चिन्तनं चक्रे, मिश्रणाख्यो भवेत् क्रमः ॥२०६॥
तृतीये लम्बिकाचक्रे, तत्तुर्यक्रमचिन्तनम् ।
संवरोधी-क्रमश्चैव, कथ्यते विबुधैः सदा ॥२०७॥
शाम्भवक्रमतश्चैव, चिन्तयेत् परमेश्वरीम् ।
तत्पञ्चमोर्ध्वचक्रे त्वाज्ञाया हंसक्रमेण वै ॥२०८॥
बैन्दवादिमहाबिन्दु-क्रमणैव सुचिन्तयेत् ।
पूर्ववद् भ्रमयेद् देवि ! कुण्डलि-क्रमतश्च तत् ॥२०९॥
षष्ठं वै चिन्तयेद् देवीमूरूपद्मे तु लम्बिकाम् ।
सप्तमं चिन्तयेद् देवि, समाधिं सविकल्पकम् ॥२१०॥

---

१. तत्-तस्मादिति । अस्य विशदं विवरणं ४० तमे प्रघट्टके ७१ तमे पृष्ठे कुण्डलिनीजागरणक्रमे द्रष्टव्यम् ।

महावैभवसंयुक्तः, साक्षाच्छिवमयो भवेत् ।
तेनातिमन्दभाग्योऽपि, कुबेराधिपतिर्भवेत् ॥२११॥
क्रमदीक्षा-समायुक्तश्चिन्तयेच्चक्रमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः, सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ॥२१२॥

४५. न्यास-प्रकरणम् —

करोम्यनेन मन्त्रेण, तालत्रयमहं शिवे ।
नारायणोऽहं ब्रह्माऽहं, भैरवोऽहं शिवोऽस्म्यहम् ॥२१३॥
देवोऽहं परमात्माऽहं, महात्रिपुरसुन्दरि ।
ध्यात्वैवं वज्रकवचं, न्यासं तव करोम्यहम् ॥२१४॥
कुमारीबीजसंयुक्तं, महात्रिपुरसुन्दरि ।
मां रक्ष रक्षेति हृदि, करोम्यञ्जलिमीश्वरि ॥२१५॥
नमो देव्यासनायेति, ते करोम्यासनं शिवे ।
चक्रासनं नमस्यामि, सर्वमन्त्रासनं भजे ॥२१६॥
साध्यसिद्धासनं वन्दे, मन्त्रैरेभिर्महेश्वरि ।
करोम्यस्मिंश्चक्रमन्त्र — देवतासनमुत्तमम् ॥२१७॥
चक्रन्यासं ततः कुर्वे, श्रीकण्ठन्यासमुत्तमम् ।
केशवादि-महान्यासं, कामन्यासं करोम्यहम् ॥२१८॥
कलान्यासं ततः कुर्वे, कुर्वे कामकलाह्वयम् ।
पीठन्यासं ततः कुर्वे, तत्त्वन्यासं करोम्यहम् ॥२१९॥
वशिन्याष्टकं न्यासं, नवयोन्याख्यमुत्तमम् ।
षोढान्यासं ततः कुर्वे, महाषोढां करोम्यहम् ॥२२०॥
षोढान्यासन्तु वै कुर्वंस्तेन ब्रह्माण्डरूपकः ।
विराड्रूपः परमात्मा, शिवः साक्षान्न संशयः ॥२२१॥

४६. षोढान्यास-स्वरूपम् —

बीजं कूटं क्रमो धातुस्तत्त्वं पञ्चमपञ्चकम् ।
पञ्चविंशतिसंख्याका, न्यासा एते प्रकीर्तिताः ॥२२२॥

वारदीक्षाक्रमश्चैव, दीक्षाक्रमस्तथैव च।
न्यासश्चैवं द्विधा चोक्तौ, नित्यं नैव क्रियेत चेत् ॥२२३॥
अङ्गषोढां कुलेशानि, कुर्यात् पूर्वोक्तवर्त्मना।
महाषोढाह्वयं न्यासं, ततः कुर्यात् समाहितः ॥२२४॥

४७. अधराम्नाय-षोढान्यासः (रविवासरे) —

रवौ पद्मे[1] शिवकला, ग्रहा दोषनिवारकाः।
दिक्पाल-डाकिनी-तारादिकं पीठं च विन्यसेत् ॥२२५॥

४८ पूर्वाम्नाय-षोढान्यासः (सोमवासरे) —

परा - परात्परान्यासौ, परात्परातीता तथा।
चित्परा चित्परात्परा, सोमे स्वाधिष्ठाने तथा ॥२२६॥
सा चित्परात्परातीता, तथेयं भुवनेश्वरी।
... ... ॥२२७॥

४९. दक्षिणाम्नाय-षोढान्यासः (मङ्गलवासरे) —

हंसो मन्त्रो लघुश्चैव, महाषोढा तथा स्मृतः।
ग्रहश्च राशि-नक्षत्र-योगाः करणमेव च ॥२२८॥
पञ्च संवत्सराः काल्या, मनून् भौमे न्यसेत्तथा।
... ... ॥२२९॥

५०. पश्चिमाम्नाय-षोढान्यासः (बुधवासरे) —

घोराष्टकं त्रिखण्डा चैवाक्षरो देवपञ्चकम्।
डाद्यष्टकस्य न्यासोऽपि षोढान्यास उदाहृतः ॥२३०॥
ग्रन्थिन्यासं तथा घोरं, द्वादशाङ्गं षडङ्गकम्।
मालिनी शब्दराशिश्च, षड्दूतं रत्नपञ्चकम्॥२३१॥
नवात्मा नव घोराश्च, षोढा चैव त्रिविद्यया।
त्रिखण्डं मन्त्रखण्डं तु, मातृखण्डं तथैव च ॥२३२॥

---

१. मूलाधारे।

रुद्रखण्डमिति प्रोक्तमनाहते बुधवासरे ।
रक्ष मां कुब्जिके देवि, रक्ष मां कुब्जिकेश्वरि ।।२३३।।
रक्ष रक्ष महादेवि, अस्मदीयमिदं वपुः ।
कुलदेवीति - विख्याता, कैलासशिखरालये ।।२३४।।
सा कुब्जिका महामाया, स्थातु श्रीर्मम मस्तके ।
[1]वर्मपाठे महत्पुण्यं, तेन भवति निर्भयः ।।२३५।।
[2]वर्मणा रक्षां प्राप्नोति, तस्मान्नित्यं पठेन्नरः ।
... ... ।।२३६।।

५१. उत्तराम्नाय-षोढान्यासः (गुरुवासरे) —

उग्रमातृक्रमः काली-कुल-पीठानि योगिनी ।
देवतामन्त्ररूपाणि, न्यासोऽयं कालिकाक्रमे ।।२३७।।
षोढान्यासे विशुद्धेस्तु, विन्यसेच्च क्रमात्तथा ।
... ... ।।२३८।।
ततश्च लघुषोढा स्यान्महाषोढा ततः परम् ।
महानिर्वाण-षोढा च, सर्वे शेषे प्रकीर्तिताः ।।२३९।।

५२. ऊर्ध्वाम्नाय-लघुषोढान्यासः (शुक्रवासरे) —

शुक्रवारे गणेशश्च, दशविद्यामयो ग्रहः ।
नक्षत्र-योगिनी-राशि-पीठं लघुषोढा स्मृतः ।।२४०।।

५३. ऊर्ध्वाम्नाय-महाषोढान्यासः (शनिवासरे) —

कूटैर्बीजैर्विना देवि, षोढान्यासो न सिद्ध्यति ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन, कूटमन्त्राणि योजयेत् ।।२४१।।
प्रपञ्चो भुवनं मूर्तिर्मन्त्रदैवत-मातरः ।
महाषोढाह्वयं न्यासमाज्ञायां विन्यसेत् सदा ।।२४२।।
सास्मदीयं शिरः पातु, सदा तिष्ठतु भैरवी ।
या विशाला विशालाक्षी, निर्मला मूलवर्जिता ।।२४३।।

---

१. २. कवच-पाठे, कवचेनेति च सन्धेयम् ।

सा योगिनी महामाया, स्थातु श्रीर्मस्तके मम ।
सिद्धेश्वरी परापरे, महाविद्या महाकला ।।२४४।।
बीजकलाऽवरोहश्च[1], सहस्त्रारे शनौ न्यसेत् ।
एतत्पाठे महापुण्यं, न्यासो देवस्वरूपगः ।।२४५।।
केवलं न्यासपाठेन, तत्र तिष्ठन्ति देवताः ।
केवलं स्मृतिमात्रेण, तृप्यन्ति सर्वदेवताः ।।२४६।।
न्यासं षोढा महाषोढा-युक्तं पूर्णं विधाय च ।
अनाख्या-भासयोः पूजा, कार्या नित्यं हि चक्रयोः ।।२४७।।

५४. अथ महाषोढान्यासफलश्रुतिः —

एवं न्यासे कृते देवि, साक्षात् परशिवो भवेत् ।
मन्त्री न चात्र सन्देही, निग्रहानुग्रहक्षमः ।।२४८।।
महाषोढाह्वयं न्यासं, यः करोति दिने दिने ।
देवाः सर्वे नमस्यन्ति, तं नमामि न संशयः ।।२४९।।
महाषोढाह्वयं न्यासं, यत्र मन्त्री न्यसेत्ततः ।
दिव्यक्षेत्रं समुद्दिष्टं, समन्ताद् दशयोजनम् ।।२५०।।
कृत्वा न्यासमिमं देवि, यत्र गच्छति मानवः ।
तत्र श्रीविजयो लाभः, सम्मानं पौरुषं प्रिये ।।२५१।।
महाषोढाकृतन्यासः, क्रुद्धो यं वीक्ष्य वन्दते[2] ।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति, यदि त्राता शिवः स्वयम् ।।२५२।।
वज्रपञ्जरनामानमेनं न्यासं करोति यः ।
दिव्यन्तरिक्ष — भूशैलजलारण्यनिवासिनः ।।२५३।।
उद्दण्डभूतवेताल — देवरक्षोग्रहादयः ।
भयग्रस्तेन मनसा, नेक्षन्ते साधकं प्रिये ।।२५४।।

---

१. पूर्वमारोहक्रमेण ततोऽवरोहक्रमेणेति ।
[सं. ४५ तः ५३ यावत् सम्बन्धिनः न्यासश्लोका अप्युपलब्धाः सन्ति ।]
२. यमुद्वीक्ष्याभिवन्दते इतिपाठा० ।

महाषोढाह्वयं न्यासं, ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
देवाः सर्वे प्रकुर्वन्ति, ऋषयश्च मुनीश्वराः ॥२५५॥
बहुनोक्तेन किं देवि, सुशिष्याय प्रकाशयेत् ।
अक्षय्यां लभते सिद्धिं, रहसि न्यासमाचरेत् ॥२५६॥
अस्मात्परतरः साक्षाद्, देवताभावसिद्धये ।
लोके नास्ति न सन्देहः, सत्यं सत्यं न संशयः ॥२५७॥
ऊर्ध्वाम्नाय - प्रवेशश्च, पराप्रासाद - चिन्तनम् ।
महाषोढा-परिज्ञानं, नाल्पस्य तपसः फलम् ॥२५८॥

५५. श्रीगुरुप्रणाम-रहस्यम् —

स्वरूपरूपणे हेतौ, श्रीगुरौ प्रथमा नतिः ।
स्वच्छप्रकाशविमर्शहेतवे तु द्वितीयका ॥२५९॥
स्वात्मारामविलीनाय, तेजसे स्यात्तृतीयका ।
योगक्षेमस्य सिद्धचर्थेऽव्यस्तहस्ता नतिर्मता ॥२६०॥
सार्धत्रिवारं प्रणमेच्छ्रीगुरुं शिवरूपिणम् ।
सर्वदण्डप्रणामादीन्, कुर्याच्छास्त्रोक्तवर्त्मना ॥२६१॥

५६. श्रीदण्डप्रणामरहस्यम् —

स्पृष्ट्वा पूर्वाम्नायग्रन्थिं, प्रणमेद् भक्तिभावतः ।
पुण्ये मतिर्भवेत् तेन, साधकस्य न संशयः ॥२६२॥
दक्षिणाम्नायग्रन्थिं च, स्पृष्ट्वा चेत्प्रणमेद् यतिः ।
क्रूरकर्मणि तस्याऽशु, मतिस्तत्र यतेर्भवेत् ॥२६३॥
नैर्ऋत्याम्नायजां ग्रन्थिं, स्पृष्ट्वा चेत् प्रणमेद् यतिः ।
पापबुद्धिर्भवेत् तस्य, नात्र कार्या विचारणा ॥२६४॥
पश्चिमाम्नायजां ग्रन्थिं, स्पृष्ट्वा चेत् प्रणमेद् यतिः ।
क्रियाप्रवृत्तिर्जायेत, साधकस्य न संशयः ॥२६५॥
वायव्याम्नायग्रन्थिं च, स्पृष्ट्वा दण्डं नमेद् यतिः ।
गमनादौ भवेद् बुद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥२६६॥

उत्तराम्नायजां ग्रन्थिं, स्पृष्ट्वा दण्डं नमेद् यतिः ।
रतिः प्रीतिर्भवेत् तस्य, साधकस्याऽचिराद् ध्रुवम् ।।२६७।।
ईशानाम्नायजां ग्रन्थिं, स्पृष्ट्वा दण्डे नमेद् यतिः ।
द्रव्यादिदाने सामर्थ्यं, साधकस्य प्रजायते ।।२६८।।
अधराम्नायजां ग्रन्थिं, स्पृष्ट्वाऽधोभागमादरात् ।
वैराग्यविज्ञानमतिर्जायते तत्क्षणाद् यतेः ।।२६९।।
सर्वैश्वर्यस्य लाभार्थं, मध्यग्रन्थिं स्पृशन् नमेत् ।
यतिरैश्वर्यलाभाय, प्रणमेद् दण्डमादरात् ।।२७०।।
षडाम्नायमहाषोढां, प्रणवस्य कलास्तथा ।
सरहस्याः परिज्ञाय, पुरश्चर्यासमन्वितः ।।२७१।।
साम्राज्यदीक्षासम्पन्नो, लोकरक्षणशक्तिमान् ।
दण्डप्रणाममात्रेण, सद्यः सिद्धिं लभेद् यतिः ।।२७२।।
ईशानाम्नाय-ग्रन्थ्या वै, निर्जराकर्षणं भवेत् ।
... ... ।।२७३।।

प्रातः श्रीभुवनेश्वर्याः, षोढान्यासं समाचरेत् ।
श्रीमहाभुवनेश्वर्या, महाषोढां तथा न्यसेत् ।।२७४।।
स्वाधिष्ठाने तु न्यस्तव्याः, पूर्वाम्नायक्रमादिमे ।
मध्याह्ने दक्षिणा काल्या, महाषोढां च विन्यसेत् ।।२७५।।
मणिपूराख्यचक्रे तु, भक्तिभावसमन्वितः ।
महोग्रतारादेव्यास्तु, मूलाधारे न्यसेत् सदा ।।२७६।।
महाषोढाह्वयं न्यासं, दक्षिणाम्नायमाश्रितः ।
कुब्जिकाया महाषोढां, सायङ्काले सदा न्यसेत् ।।२७७।।
पश्चिमाम्नायमाश्रित्य, हृच्चक्रेऽनाहते सदा ।
उत्तराम्नायमाश्रित्य, प्राक् प्रातःकृत्यतश्चरेत् ।।२७८।।
प्रागेव ब्राह्ममुहूर्तात्, कुर्यात् षोढाचतुष्टयम् ।
बालायाः पञ्चदश्याश्च, श्रीमहाषोडश्यास्तथा ।।२७९।।

महात्रिपुरसुन्दर्या, आज्ञाचक्रे तु विन्यसेत् ।
सर्वरक्षाकरं वश्य-सहितं तु यशस्करम् ।।२८०।।

५७. नित्य-दण्ड-ग्रहणमन्त्रः —

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश, देवानां हितकाम्यया ।
देवस्यारिविनाशाय, सदा मम करे भव ।।२८१।।

५८. दण्डतर्पणम् —

द्वादश दण्डमूले तु, दण्डाग्रेऽपि तथैव हि ।
मुद्रायां द्वादश प्रोक्तं, प्रतिपर्व त्रिधा मतम् ।।२८२।।
द्विधालोड्य च मध्येन, मूले प्रोक्तं नवाङ्कितम् ।
अग्रे सप्ताङ्कितं प्रोक्तमिति दण्डस्य तर्पणम् ।।२८३।।
शिरःप्रोक्षणमग्रेण, मूलेन पाद-प्रोक्षणम् ।
... ... ।।२८४।।

सुरास्तिष्ठन्ति दण्डाग्रे, दण्डमूले तु पूर्वजाः ।
प्रतिग्रन्थि तु गन्धर्वा, मध्ये तिष्ठन्ति मानवाः ।।२८५।।
अस्माकं ये कुले जाता, नाम-गोत्र-विवर्जिताः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु, दण्ड-सम्बन्धिवारिणा ।।२८६।।
समाप्य यस्य स्मृत्येति शक्रादिकगुरून् नमेत् ।
ततोऽध्यात्म-ग्रन्थानां श्रवणादिकमाचरेत् ।।२८७।।

५९. दण्ड-वन्दनं वन्दनवेलायां करणीयं च —

हृदये हस्तं निधाय श्रीनाथादि [1] गुरुपारम्पर्येण यावत्स्वगुरु–पादाम्बुजं तावत् प्रणमामीति शिरसि हस्तं निधाय— "ॐ नारायणाय नमः ।। ॐ पद्मभवाय नमः ।। ॐ वसिष्ठाय नमः ।। ॐ शक्त्यै नमः ।। ॐ पराशराय नमः ।। ॐ व्यासाय नमः ।। ॐ शुकाय नमः ।। ॐ गौडपादाचार्येभ्यो नमः ।। ॐ गोविन्दभगवत्पूज्यपादाचार्येभ्यो नमः ।। ॐ श्रीभगवत्पादशङ्कराचार्येभ्यो नमः ।। ॐ विश्वरूपाचार्येभ्यो नमः ।। ॐ पद्मपादाचार्येभ्यो नमः । ॐ हस्तामलकाचार्येभ्यो नमः ॐ त्रोटकाचार्येभ्यो नमः ।। ॐ समस्तब्रह्मविद्या-सम्प्रदायप्रवर्तकाचार्येभ्यो नमः ।। ॐ गुं गुरुभ्यो नमः ।। ॐ पं परमगुरुभ्यो

१, श्रीनाथाद्य०/इति पाठा०

नमः ।। ॐ पं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः ।। ॐ पं परात्परगुरुभ्यो नमः ।। (वामस्कन्धे) ॐ गं गणपतये नमः ।। (दक्षिणस्कन्धे) ॐ दुं दुर्गायै नमः ।। (वामकुक्षौ) ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः ।। (दक्षिणकुक्षौ) ॐ सं सरस्वत्यै नमः ।। (नाभौ) ॐ पं परमात्मने नमः ।। ॐ परब्रह्मणे नमः ।। (हृदये) । ततो हृदयकमलमध्ये सर्वतेजोमयं परं ब्रह्मस्वरूपं प्रणवं ध्यात्वा हृदयमालभेत ।। षट्प्राणायामान् कृत्वा प्रणवेन करशुद्धिं कुर्यात् । यथा—

प्रकोष्ठे मणिबन्धे च, कूर्परयोर्हस्तयोस्तले ।
तत्पृष्ठे च तदग्रे च, करशुद्धिरुदाहृता ।।२८८।।

६०. न्यासाः —

ॐ भूरज्ञानात्मने तुषारवर्णायाङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।। ॐ भुवः प्राजापत्यात्मने रक्तवर्णाय तर्जनीभ्यां नमः ।। ॐ स्वः सूर्यात्मने श्यामवर्णाय मध्यमाभ्यां नमः ।। ॐ महः ब्रह्मात्मने नीलवर्णायानामिकाभ्यां नमः ।। ॐ जनः ज्ञानात्मने कृष्णवर्णाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।। ॐ तपः सत्यात्मने श्वेतवर्णाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।। एवं हृदयादि० ।

ततः प्लुतोच्चारेण प्रणवेन हृदयादारभ्य शिरःप्रभृति-पादाङ्गुष्ठपर्यन्तं त्रिवारं व्यापकं कुर्यात् । ततस्तालत्रयं कृत्वा बाणमुद्रया छोटिकात्रयञ्च विधाय प्रणवेन दिग्बन्धः —

ॐ हं हमिति बीजेनाकाशप्राकारं विचिन्त्य, यं यमिति वायुप्राकारं विचिन्त्य, रं रमित्यग्निप्राकारं विचिन्त्य, वं वमिति जलप्राकारं विचिन्त्य, लं लमिति पृथ्वीप्राकारं विचिन्त्य, कराग्रं च ब्रह्मरन्ध्रे निधाय परमाकाशं विचिन्तयेत् ।

स्फुरत्तारक-सङ्काशं, विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् ।
हृदिस्थं सर्वदा ध्यायेदोमिति ज्योतीरूपकम् ।।२८९।।

ततः ॐ नमो नारायणायेत्यष्टवारं जपेत् ।

६१. प्रणवस्याक्षरादीनां विनियोगाः —

ॐ प्रणवस्यान्तर्यामी ऋषिर्दैवीगायत्री च्छन्दः परमात्मा देवता लातव्यगोत्रोत्पन्नो ब्रह्मपुत्रकः श्वेतो वर्ण उदात्तस्वरो ज्ञानाग्निर्मुखं ॐ अं बीजं ॐ उं शक्तिः ॐ मं कीलकं मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।

ॐ अकारस्याग्निर्ऋषिर्दैवीगायत्री च्छन्दो ब्रह्मा देवता क्लीं बीजं क्रिया शक्तिः पीतो वर्णः जाग्रदवस्था भूः स्थानमुदात्तः स्वरः ऋग्वेदो गार्हपत्योऽग्नी रजो गुणः प्रातःसवनं विश्वात्मा पृथ्वीतत्त्वं सृष्टिक्रियाव्याप्त्यर्थे विनियोगः ।

ॐ उकारस्य वायुऋषिस्त्रिष्टुपछन्दो विष्णुर्देवता श्रीं बीजं ज्ञानं शक्ति-विद्युद्वर्णः स्वप्नावस्था भुवः स्थानमनुदात्तःस्वरो यजुर्वेदो दक्षिणाग्निः सत्त्वगुणो माध्यन्दिनं सवनं तैजस आत्मान्तरिक्षं तत्त्वं स्थितिक्रियोत्कर्षार्थे विनियोगः ।

ॐ मकारस्य सूर्य ऋषिर्जगतीच्छन्द ईश्वरो देवता ह्रीं बीजं द्रव्यं शक्तिः श्वेतो वर्णः सुषुप्त्यवस्था स्वःस्थानं स्वरितः स्वरः सामवेदः आहवनीयोऽग्नि-स्तमोगुणः सायंसवनं प्राज्ञ आत्मा द्यौस्तत्त्वं संहारक्रियार्थे विनियोगः ।

ॐ अर्धमात्रायाः वरुणऋषिर्विराट् छन्दः पुरुषो देवता क्लीं बीजं विज्ञानं शक्तिः सर्वे वर्णास्तुरीयावस्था भूर्भुवःस्वःस्थानानि उदात्तानुदात्तस्वरिताः स्वराः अथर्ववेदो नादो वा संवर्तकः सर्वे गुणाः सर्वाणि सवनानि सर्व आत्मानः पृथ्व्यन्तरिक्ष-दिवस्तत्त्वानि सृष्टिस्थितिसंहारक्रियार्थे विनियोगः ।

ॐ ध्वनेः ब्रह्माऋषिर्गायत्रीछन्दः परमानन्दो देवता हंसो बीजं चिच्छक्तिर्नादः स्वरूपं ब्रह्मात्मा स्वःस्थानमुन्मन्यवस्था मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।

६२. पञ्चोपचार–पूजनम् —

ॐ लं पृथ्वीगन्धतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय गन्धं परिकल्पयामि । ॐ हं आकाशशब्दतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय पुष्पं परिकल्पयामि । ॐ रं अग्निचक्षुस्तन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय दीपं परिकल्पयामि । ॐ वं अमृतरसतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय नैवेद्यं परिकल्पयामि । ॐ सं शान्तिसर्वतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय पुष्पाञ्जलिं परिकल्पयामि । इति ।

६३. तर्पणम् —

ॐ वमित्यमृतबीजेन धेनुमुद्रया जलेऽमृतरूपं ध्यात्वा प्रणवेन द्वादशवारम-भिमन्त्र्याष्टोत्तरशतवारञ्च तर्पयेत् । ऋषीन् तर्पयामि ।। छन्दांसि तर्पयामि ।। देवतास्तर्पयामि ।। हृदयदेवं तर्पयामि । शिरोदेवं तर्पयामि । शिखादेवं तर्पयामि । कवचदेवं तर्पयामि । नेत्रदेवं तर्पयामि । अस्त्रदेवं तर्पयामि ।

६४. अर्घ्यप्रदानम् —

ॐ आत्मैवेदं सर्वम् । ॐ ब्रह्मैवेदं सर्वम् । ॐ सर्वं खल्विदं ब्रह्म । (इति त्रिवारमञ्जलिं दद्यात्) ।

६५. उत्तरपूजनम् —

पूर्ववत्सम्पूज्य स्वहृदये सपरिवारदेवमुद्वासयेत् ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश, पुनरागमनाय च ।
प्रसीद त्वं महेशान, प्रविश हृदये मम ।।२९०।।

दक्षिणहस्ते जलमादाय प्रणवेन द्वादशवारमभिमन्त्र्य वामकरे निक्षिप्य तदञ्जलितोयेन शिरः सम्प्रोक्ष्य चाचम्य प्राणायामत्रयं कुर्यात् । जलमादाय सङ्कल्पः ।

ॐ मनसा चिन्तितं यन्मे, वचसा भाषितं पुनः ।
कायेन च कृतं कर्म, सर्वं ब्रह्मार्पणं भवेत् ।। इति ।

६६. प्रणवोच्चारेण दण्डतर्पणम् —

द्वादश दण्डमूले तु, दण्डाग्रेऽपि तथैव हि ।
मुद्रायां द्वादश प्रोक्तं, प्रतिपर्व त्रिधा ततम् ।।२६१।।[1]
द्विधालोड्य च मध्येन, मूले प्रोक्तं नवाङ्कितम् ।
अग्रे सप्ताङ्कितं प्रातरिति दण्डस्य तर्पणम् ।।२६२।।
शिरःप्रोक्षणमग्रेण, मूलेन पादप्रोक्षणम् ।
... ... ।।२६३।।
सुरास्तिष्ठन्ति दण्डाग्रे, दण्डमूले तु पूर्वजाः ।
प्रतिग्रन्थि तु गन्धर्वा, मध्ये तिष्ठन्ति मानवाः ।।२६४।।
अस्माकं ये कुले जाता, नामगोत्रविवर्जिताः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु, दण्डसम्बन्धिवारिणा ।।२६५।।
समाप्य यस्य स्मृत्येति, शङ्कादिकगुरून् नमेत् ।
ततोऽध्यात्मग्रन्थानां श्रवणादिकमाचरेत् ।।२६६।।

६७. तुर्या सन्ध्या —

ॐ अजपानाम-गायत्री, योगिनां सिद्धिदा मता ।
हंसः पदं महेशानि ! प्रत्यहं जपते नरः ।।२६७।।
मोहाद् यो वै न जानाति, मोक्षस्तस्य न विद्यते ।
अजपां जपतो नित्यं, पुनर्जन्म न विद्यते ।।२६८।।
हकारेण बहिर्यान्तं, विशन्तञ्च सकारतः ।
चिन्तयेत्परमेशानि, जीवन्तं पक्षिरूपिणम् ।।२६९।।

---

१ — अत्र २५६ तः २६४ संख्यां यावत् प्रोक्ताः श्लोकाः पूर्वोक्त—५८संख्यक—'दण्ड-तर्पण'—शीर्षकोक्ता एव सन्ति । अत्र विधेरावश्यकत्वात् पुनः प्रोक्ता इति ।

श्रीगुरोः कृपया देवि, ज्ञायते जप्यते सदा ।
उच्छ्वास-निःश्वासतया, बन्धमोक्षस्तदा भवेत् ॥३००॥

६८. न्यासाः —

ॐ हं सां सूर्यायाङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॥ ॐ हं सीं सोमाय तर्जनीभ्यां नमः ॥ ॐ हं सूं निरञ्जनाय मध्यमाभ्यां नमः ॥ ॐ हं सैं निराभासायानामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्माय कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ॐ हं सः करतलकर-पृष्ठाभ्यां नमः ॥ (एवं हृदयादि)

६९. ध्यानम् —

ॐ अस्य हंसस्य देवेशि, निगमागमपक्षकौ ।
उभावपि चाग्निसोमौ, वक्षो हंसः शिरो भवेत् ॥३०१॥
बिन्दुत्रयं शिखानेत्रे, मुखं नादः प्रकीर्तितः ।
शिवशक्तिपदद्वन्द्वं, कालाग्निपार्श्वयुग्मकम् ॥३०२॥
हंसः परमहंसोऽयं, सर्वव्यापी प्रकाशवान् ।
सूर्यकोटिप्रकाशश्च, स्वप्रकाशेन भासते ॥३०३॥

(ततो यथाशक्ति हंसमन्त्रं प्रजप्य समष्टिव्यष्टिक्रमेणाजपाजपनिवेदनं कुर्यात् ।)

७० अजपाजपनिवेदनम् —

ॐ गतारुणोदयादागाम्यरुणोदयपर्यन्तं श्वासप्रश्वासानुसारं कृतं षट्-शताधिकैकविंशतिसहस्राजपाजपेन गणेश-ब्रह्म-विष्णु-महेश-जीव-परमात्म-गुरवः प्रीयन्ताम् ॥ चतुर्दले मूलाधारे षट्शतेन साङ्गः सावरणः सायुधः सशक्तिकः सवाहनः श्रीगणेशः प्रीयताम् ॥ षड्दले स्वाधिष्ठाने सहस्रषट्केन[1] ब्रह्मा प्रीयताम् ॥ दशदले मणिपूरके सहस्रषट्केन विष्णुः प्रीयताम् ॥ द्वादशदलेऽनाहतचक्रे सहस्रषट्केन महेशः प्रीयताम् ॥ षोडशदले विशुद्धचक्रे सहस्रेण जीवात्मा प्रीयताम् ॥ द्विदलात्मकाज्ञाचक्रे सहस्रेण परमात्मा प्रीयताम् ॥ (आचार्येभ्योऽत्र विशेषः) ईश्वराय सहस्रं० सदाशिवाय सहस्रञ्चेति । ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे सहस्रेण श्रीगुरुः प्रीयताम् ॥[2]

---

१. अत्र साङ्गः सावरण इत्यादि पाठो योजनीयः ।

२. अजपा-समर्पणं त्रिभिः प्रकारैर्भवति । तत्र प्रथमे प्रकारे सहस्रदले गुरव एव सर्वं समर्प्यते । द्वितीये प्रकारे — गणेश-ब्रह्म-विष्णु-महेश-जीवात्म-परमात्म-गुरुभ्यः समर्प्यते । तृतीये प्रकारे च— गणेश-ब्रह्म-विष्णु-जीवात्म-ईश्वर-सदाशिव-गुरुभ्यः समर्प्यते । अस्मिन् क्रमे आज्ञाचक्रत ऊर्ध्वस्थानां दशचक्राणां चिन्तनमपि भवति ।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्रि त्वं, गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि, त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥३०५॥
त्रैलोक्यचैतन्यमयीश्वरेशि, श्रीसुन्दरि त्वच्चरणाज्ञयैव ।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं, संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥३०६॥

एवं सन्ध्योपासनं विधायान्ते स्वाधिकारानुरूपं प्रणवजपं प्रकुर्वीत । तथा चोक्तम् —

जपे द्वादशसाहस्रं, प्रणवस्य प्रयत्नतः[1] ।
सहस्रं श्रवणार्थी तु, योगाभ्यासी शतं जपेत् ॥३०७॥
निर्विकल्पसमाधिस्तु, न जपेत्किञ्चिदद्वयात् ॥

७१. जपनिवेदनमन्त्रः —

पुण्डरीकाक्ष विश्वात्मन्, मन्त्रमूर्ते जनार्दन ।
गृहाणेमं मन्त्रजपं, मम दीनस्य शाश्वत ॥३०८॥

७२. दण्डस्थापनमन्त्रः —

तिष्ठ त्वं देवदेवेश, तिष्ठ त्वं दण्डदैवत ! ।
ऋषिभिर्मुनिभिश्चैव, गन्धर्वैश्च समं सदा ॥३०९॥

७३. दण्डपतने ग्रहणमन्त्रो ध्यानं स्तुतिश्च —

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भगवन्, नारायण जगत्पते ।
दण्डरूपिन् महाविष्णो, प्रसीद पुरुषोत्तम ॥३१०॥
मातृपितृसमो दण्डो, भ्रातरो गुरवस्तथा ।
पथि साधनहेतुश्च, ब्रह्ममुद्रे नमोऽस्तु ते ॥३११॥
विष्णुहस्ते यथा चक्रं, शूलं शिवकरे यथा ।
इन्द्रहस्ते यथा वज्रं, तथा दण्ड भवाद्य मे ॥३१२॥

७४. यतीनामनाख्या-भासाक्रमौ —

दशावरणपूजां कृत्वा, श्रीदेवीं प्रतर्प्य च ।
उपचारैः षोडशभिः, साङ्गं सावरणं शिवम् ॥३१३॥

---

१. २६ संख्यकपृष्ठस्था पादटिप्पणी द्रष्टव्या ।

पूजयेन्मूलमन्त्रेण, गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
महाषोढोदिताशेष-परिवारांश्च शाम्भवि ! ॥३१४॥
प्रणवादिनमोऽन्तेन, तत्तन्नाम्ना प्रपूजयेत् ।
... ... ॥३१५॥

७५. यतीनां कर्त्तव्यानि —

चक्राणां क्रमशो ध्यानं, जपनं चिन्तनं तथा ।
प्रणवस्य च मात्राणां, शक्तेश्च चिन्तनं खलु ॥३१६॥
कर्त्तव्यानि षडेतानि, यतिभिर्नियतं सदा ।
सम्प्रोक्तक्रमनिर्वाहादैश्वर्यं प्राप्यते ध्रुवम् ॥३१७॥
शौचं स्नानं जपं ध्यानं, सुरार्चनं भिक्षाटनम् ।
कर्त्तव्यानि षडेतानि, सर्वथा [1]नृपदण्डवत् ॥३१८॥

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य-विरचितः
श्रीयतिदण्डैश्वर्य-विधानान्तर्गतो विभूतिपादः ।

[टिप्पणीः — अस्मिन् पादे ३१८ श्लोकाः सन्ति तेषु ३१ श्लोकाः ८ अर्द्धश्लोकास्तथा केचनान्ये श्लोका अपठिता विद्यन्ते ।]

१. गुरोराज्ञावदिति ।

यतिदण्डैश्वर्य-विधाने

तत्त्वपादः

१. प्रणवमहिमा—

अष्टाङ्गं च चतुष्पादं, त्रिस्थानं पञ्चदैवतम् ।
ओङ्कार-प्रभवं सर्वं, त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १ ॥
त्रिस्थानं च त्रिमात्रं च, त्रिब्रह्म च त्रयाक्षरम् ।
त्रिमात्रमर्धमात्रं वा, यस्तं वेद स वेदवित् ॥ २ ॥
सर्वतत्त्वमयः सर्वमन्त्रदैवत-विग्रहः ।
सर्वाम्नायात्मकश्चायं प्रणवः परिपठ्यते ॥ ३ ॥

२. प्रणवस्य मात्रादेवतादि-ज्ञानावश्यकत्वम् —

तस्मात् तत्र प्रणवगा, मात्रास्तासां च देवताः ।
तन्मात्राश्चापि विज्ञेया, यतिभिर्दण्डधारिभिः ॥ ४ ॥

३. प्रणव-मात्रा-वर्णनम् —

अकारः प्रथमा मात्रा, उकारस्तदनन्तरम् ।
मकारश्चार्द्धमात्रा च, नादबिन्दू ततः परम् ॥ ५ ॥
मात्राषट्कमिदं ज्ञेयं, प्रणवस्थितमद्भुतम् ।
अर्द्धमात्रा त्वनुच्चार्या, तस्मात् पञ्चकमेव तत् ॥ ६ ॥

४. प्रणवस्य मात्राणां वर्णाः —

अकारः पीतवर्णः स्याद्, रजोगुण उदीरितः ।
उकारः सात्त्विकः शुक्लः, कृष्णो मस्तामसः स्मृतः ॥ ७ ॥

५. प्रणवस्यान्याः षोडश मात्राः —

मात्राः प्रणवस्यान्यास्तु, स्मर्यन्ते षोडशेति याः ।
ताश्च प्रस्तारभेदेन, प्रदर्श्यन्ते ततः परम् ॥ ८ ॥
कला ततः कलातीता, शान्ता शान्त्यतीता ततः ।
उन्मन्येकादशी प्रोक्ता, द्वादशी तु मनोन्मनी ॥ ९ ॥

वैखरी मध्यमा पश्चात्, पश्यन्ती च परा ततः ।
एवं षोडशरूपोऽयं, प्रणवः सूक्ष्ममात्रकः ॥१०॥

६. स्थूलादिभेदेनैतासां मात्राणां चतुःषष्टिमात्रात्वम् —

ओङ्कारस्योक्तरूपस्य, मात्राणां पुनरेव हि ।
प्रत्येकं वै स्थूल-सूक्ष्म-बीज-तुर्य-प्रभेदतः ॥११॥
मात्राणां स्युश्चतुःषष्टी, रूपाण्यथ सनन्दन[1] ।
एता अपि पुनः सर्वा, वर्धन्ते चोक्तरूपतः ॥१२॥

७. प्रकृति-पुरुषात्मकतया प्रणवमात्राणां द्वैविध्यम् —

प्रकृत्या पुरुषेणैता, अष्टाविंशतिकोत्तराः ।
शतमात्राश्च सिद्ध्यन्ति, द्वैविध्यं समुपाश्रिताः ॥१३॥

८. सगुण-निर्गुणात्मकतया पुनरपि द्वैविध्यम् —

ततो द्विशतं मात्राः स्युः, षट्पञ्चाशत् पराश्च ताः ।
द्वैविध्यं सगुणेनैवं, निर्गुणेन समाश्रिताः ॥१४॥
एता मात्राः क्रमेणाग्रे, वक्ष्यन्ते देवतायुताः ।
यासां स्मरणमात्रेण, नरः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥१५॥

९. प्रणवस्याम्नायक्रमदीक्षास्वरूपम् —

यानि तत्र चतुःषष्टी, रूपाणि प्रणवस्य तु ।
तान्येव तावदाम्नाय-क्रम-दीक्षाः[2] प्रकल्पिताः ॥१६॥

१०. प्रणवस्याम्नाय-स्वरूपम् —

प्रणवः सर्वविद्यानां, यथोत्पत्तिस्थलं स्मृतम् ।
तथैवाम्नायरूपत्वं, प्रसिद्धं साधनाविधौ ॥१७॥

११. आम्नायानां मूलतः षड् भेदाः —

दिशश्चतस्रः पूर्वाद्या, ऊर्ध्वाधोदिग्युतास्तथा ।
षडाम्नायाः साधनायां, तन्त्रविद्भिः प्रकीर्तिताः ॥१८॥

---

१. अत्र सनन्दनपदेन 'पद्मपादाचार्य !' इति बोध्यम् ।
२. क्रमदीक्षाया विषये भूमिकायां परिशिष्टे च विलोकनीयम् ।

इदं षोढात्मकं रूपं, प्राणिनां देहसंश्रितम् ।
षट्चक्रस्वरूपेण, राजतेऽध्यात्ममूलकम् ॥१६॥
चक्रषट्कमिदं स्थूलं, तथा सूक्ष्मं च विद्यते ।
अतिसूक्ष्मस्वरूपं तु, षोढातः परिवर्धते ॥२०॥
ओङ्काररूपतैवैषां, चक्राणां नाम-भेदतः ।
क्रमदेवादि-व्यवस्था, वर्ण्यतेऽत्र विशेषतः ॥२१॥

१२. प्रणवस्य कूटात्मकं महानिर्वाणस्वरूपम् —

अकारो वाग्भवः कूट, उकारः कामराजकः ।
मकारः शक्तिकूटात्मा[1], नादः श्रीषोडशी-तनुः ॥२२॥
बिन्दुर्महाषोडशीति, नित्यं कूटात्मता-स्थितः ।
महानिर्वाणरूपोऽयं, वर्तते प्रणवः स्वराट् ॥२३॥

१३. प्रणवमात्रास्वाम्नायव्यवस्था —

अ-उ-मा नाद-बिन्दू च, मात्राः पञ्च यथाक्रमम् ।
पञ्चाम्नायाः समाख्याताः, पूर्वादिक्रमतो बुधैः ॥२४॥
अर्द्धमात्रा त्वनुच्चार्या, तस्मादत्र विचारणा ।
यतिभिर्नैव विहिता, कार्यस्तत्र न संशयः ॥२५॥

१४. प्रणवमात्राणां सृष्टयादिक्रमः —

अकारादिक-बिन्द्वन्ता, मात्रा याः प्रणवस्थिताः ।
सृष्टि-स्थिति-लयानाख्या-भासास्ता एव संस्मृताः ॥२६॥

१५. दिक्क्रमेण सृष्टयादिक्रमेण च प्रणवमात्राव्यवस्था —

अकारः पूर्व आम्नायः, कथितः सृष्टिबोधकः ।
उकारो दक्षिणः प्रोक्त, आम्नायः स्थितिवाचकः ॥२७॥
मकारः पश्चिमाम्नायरूपः स्याल्लयसंज्ञितः ।
नादः स्यादुत्तराम्नायोऽनाख्या-क्रम-विबोधकः ॥२८॥

---

१. षट्चक्रेषु द्वयोर्द्वयोश्चक्रयोर्मेलनेन निष्पन्नानामुपाम्नायस्य चतुर्णां चक्राणां वर्णनमग्रे भविष्यति ।

बिन्दुः स्यादूर्ध्व आम्नायो, भासाभावस्य सूचकः ।
अधराम्नाय एतेषां[1], सदा विश्रान्तिको भवेत् ॥२९॥

अधरस्य समष्टिस्तु, दक्षिणे प्रभविष्यति ।
यथैवोत्पद्यते वाणी, यथावद् बीजरूपतः ॥३०॥

अनेनैव क्रमेणात्र, मात्राणां स्थितयो मताः ।
बिन्दौ चतस्रश्चान्यत्र, तिस्रः स्युर्गुणिताः क्रमात् ॥३१॥

पूर्वाम्नायः सृष्टिरूपः, स्थितिरूपश्च दक्षिणः ।
संहारः पश्चिमो ज्ञेयो, ह्यन्तर्लीनस्तथोत्तरः ॥३२॥

ऊर्ध्वश्चानुग्रहो भूयश्चाधो विश्रान्तिको भवेत् ।
एषाऽऽम्नाय-व्यवस्थैव, तन्त्रे सर्वत्र वर्णिता ॥३३॥

मन्त्रयोगं विदुः पूर्वे, भक्तियोगं च दक्षिणे ।
पश्चिमे कर्मयोगं च, ज्ञानयोगं तथोत्तरे ॥३४॥

ऊर्ध्वे विज्ञानयोगं च, शब्दयोगं तथाऽधरे ।
चिन्तयित्वा क्रियां कुर्यात्, ततः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥३५॥

१६. आम्नायानामुपासनाफलम् —

एकैकाम्नायजा मन्त्रा, भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ।
एकाम्नायं च यो वेत्ति, स मुक्तो नात्र संशयः ॥३६॥

किं वा पुनः षडाम्नाय-वेत्ता साक्षाच्छिवो भवेत् ।
अतस्तु तत्तन्मन्त्राणां, ज्ञानं कर्त्तव्यमेव हि ॥३७॥

१७. प्रणवमात्रासु शिवस्वरूपपूर्वकं सृष्ट्यादिव्यवस्था —

अकारः सृष्टिरूपो यः, पूर्वाम्नायात्मना स्थितः ।
स च तत्पुरुषाख्यस्तु, स्मृतो वाग्भवकूटवान् ॥३८॥

उकारः स्थितिरूपः स्याद्, दक्षिणाम्नायरूपकः ।
अघोरनाम्ना विख्यातः, कामराजस्य कूटवान् ॥३९॥

---

१. पञ्चानां स्यादिति पाठा० ।

मकारो लयरूपः स्यात्, पश्चिमाम्नायरूपधृक् ।
सद्योजात इति ख्यातः, शक्तिकूटात्मना स्थितः ।।४०।।
अर्धमात्रायाः कालाग्नि-रुद्राख्यस्तु शिवः स्मृतः ।
अधराम्नायो व्याख्यातः, कादिकूटसमन्वितः[1] ।।४१।।
सोमात्मकं परं प्रोक्तं, सदा साक्षि सदाऽच्युतम् ।
पातालानामधोभागे, कालाग्निर्यः प्रतिष्ठितः ।।४२।।
नादोऽनाख्यारूप उक्तो, महाषोडशिकायुतः[2] ।
वामदेवाभिधः सोऽयं, सदा सप्तदशीयुतः ।।४३।।
बिन्दुरूर्ध्वाम्नाय उक्तो, भासा रूपावबोधकः ।
ईशानः शिवविख्यातो, नित्यमष्टादशीयुतः ।।४४।।

१८. अकारमात्रायाश्चक्र-विद्या-कूट-क्रमाम्नायाः —

अकारस्य विशुद्धञ्च, स्वाधिष्ठानमनाहतम् ।
भवन्ति त्रीणि चक्राणि, कादिविद्या तथैव च ।।४५।।
वाग्भवं कूटमाम्नातं, कुण्डलीक्रम उच्यते ।
उत्तरः प्राक् पश्चिमश्चेत्याम्नायास्त्रय एव हि ।।४६।।

१९ कादि-हादि-सादिक्रमकूटव्यवस्था —

(अ—उ—म)

सौम्यैन्द्रीपश्चिमाम्नायत्रितयात्मा च वाग्भवः ।
कादिः स एव कथितः, कूट आगमवेदिभिः ।।४७।।
याम्याधरोर्ध्व-त्रितयाम्नायात्मा कामराजकः ।
हादिः स एव कथितः, कूटस्तन्त्रविशारदैः ।।४८।।
उपाम्नायप्रभेदानां, संस्मृतः शक्तिकूटकः ।
सादिः स एव कथितः, कूटक्रम-विवेचकैः ।।४९।।

---

१. यद्यप्यधराम्नायः सादिकूटात्मक एव तथापि स कादिकूटेन समन्वित इत्यपि प्रोक्तम् ।

२. सदानुग्रहकारक इति पाठा० ।

२०. कूटत्रयस्य देवताः —

कादिः काली समाख्याता, हादिः श्रीसुन्दरी मता ।
सादिश्च तारिणी प्रोक्ता, क्रमज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः ॥५०॥

२१. कादि-विद्यानां क्रमाः —

कादिः कुण्डलिनी प्रोक्ता, हादिर्हंसक्रमो मतः ।
कहादि-सादिस्तत्त्वज्ञैः, संवरौधिक्रमः स्मृतः ॥५१॥

२२. कादिक्रमाणां प्रणवमात्राक्रमः —

अकारः कादिरूपः स्यादुकारो हादिरूपकः ।
कहादि-सादि-रूपश्च, मकारस्तत्र वर्णितः ॥५२॥

काली कादेः सुन्दरी च, हादेः शक्तिः समीरिता ।
कहादिसादिभेदानां, तारिणी शक्तिरीरिता ॥५३॥

२३. प्रतिकूटं क्रमः कादिक्रमाणां सृष्ट्यादिसन्धानञ्च —

कादि-हादि-सादि-काली, सुन्दरी तारिणीति च ।
पूर्वपञ्चसु सृष्ट्यादौ, सन्दध्यात् सततं बुधः ॥५४॥

कादिः सृष्टिस्तथा हादिः, स्थितिरूपः सदैव हि ।
कहादि-सादिः संहाररूप उक्तो महात्मभिः ॥५५॥

सृष्टिः स्थितिश्च संहारोऽनाख्याभासाभिधः क्रमात् ।
प्रतिकूटं भवेत् पञ्च, पञ्चेति गदितं क्रमात् ॥५६॥

कादित्वाद् ब्रह्मरूपत्वं, हादित्वाच्छिवरूपता ।
चिच्छक्तिः कादिरूपा स्याद्, हादिश्चिद्ज्ञानगोचरा ॥५७॥

चिदानन्दस्वरूपाख्यं, शिवशक्त्यात्मकं महः ।
कादिस्तु कामराजोऽस्ति, हादिर्लोपा पुरे[मुदे]रिता ॥५८॥

एवं हि शास्त्रसम्मत्या, पारिभाषिकमीरितम् ।
... ... ॥५९॥

२४. अकारस्य मात्रायाः शक्तयः —

(कादिवाग्भवकूटकुण्डलिनीक्रमोत्तरपूर्वपश्चिमाम्नायाः)

अकारमात्राः कथ्यन्ते, सिद्धिलक्ष्म्यादिनामतः ।
भरतोपासिता गुह्यकाली—नाम्ना प्रतिष्ठिता ॥६०॥

रामेणोपासिता गुह्यकाली चैव तथा भवेत् ।
चण्डकपालिनी गुह्यकाली चैव सदा स्मृता ॥६१॥

कामकला गुह्यकाल्युन्मनी पूर्णेश्वरी स्वयम् ।
भुवना भुवनेशी च, भुवनेश्वर्येव संस्मृता ॥६२॥

समयाऽघोरवीरे च, वज्राऽघोरे हि कुब्जिके ।
कर्मकुब्जिका चेति वै, मात्राः षोडश सूचिताः ॥६३॥

विशुद्धचक्रगा देव्य, उत्तराम्नाय-वर्णिताः ।
पञ्चात्र डाकिनी चक्रदेवतासहिता मताः ॥६४॥

स्वाधिष्ठानस्य पञ्च स्युः, पूर्वाम्नायस्य देवताः ।
काकिनी चक्रदेवी च, मता ह्यत्र तथा परम् ॥६५॥

पश्चिमाम्नायदेव्यः स्युरनाहतगताश्च षट् ।
राकिनी देवता तत्र, दर्शिता क्रमपूर्वकम् ॥६६॥

२५. उकारमात्रायाश्चक्र-विद्या-कूटक्रमाम्नायाः —

मणिपूरं मूलाधारमाज्ञाचक्रं तथैव च ।
चक्राण्युकारस्यैतानि, हादिविद्या च तद्गता ॥६७॥

कूटं श्रीकामराजस्य, क्रमो हंसाख्य एव च ।
दक्षिणाधरोर्ध्वाम्नायास्त्रय एवात्र सिद्धिदाः ॥६८॥

२६ उकारस्य मात्रायाः शक्तयः —

(हादि-कामराजकूट-हंसक्रम-दक्षिणाधरोर्ध्वाम्नायाः)

आद्याकाली च महाद्या-काली चैव तथा भवेत् ।
श्यामाकाली सिद्धिकाली, दक्षिणाकालिका ततः ॥६९॥

तारिण्येकजटा चोग्रतारा नीलसरस्वती ।
महानीला महोग्रा च, शारदा चैव सम्मताः ॥७०॥
बालादित्रिपुरा बाला-सुन्दरी बालाभैरवी ।
बालापूर्वा या त्रिपुरा, भैरवी सैव सुन्दरी ॥७१॥
उकारस्यापि तत्तन्त्रे, मात्राः षोडश सिद्धिदाः ।
दक्षिणाम्नायदेवीनां, पञ्चकञ्चात्र दर्शितम् ॥७२॥
मणिपूरगताश्चैता, लाकिनी-देवता मता ।
अधराम्नायदेवीनां, पञ्चकञ्च ततः परम् ॥७३॥
मूलाधारगताश्चैताः, साकिनी-देवता मता ।
ऊर्ध्वाम्नायस्य देवीनां, षट्कमालागतं मतम् ॥७४॥
हाकिनी देवता तत्र, चक्रस्यापि समाश्रिता ।
एवं देहस्य चक्रेषु, देव्य एताः सनायिकाः ॥७५॥

२७. मकारमात्राया अधोमुखचक्र-विद्या-कूट-क्रमाम्नायाः —

प्रणवस्य मकाराख्या, मात्रा या वर्णिता पुरा ।
उपाम्नायात्मिका सा तु, प्रथिता तन्त्रवित्तमैः ॥७६॥
अनाहतं मणिपूरं, श्लिष्ट्वा नैऋत्यदिग् भवेत् ।
मणिपूरं स्वाधिष्ठानं, मिलित्वाग्नेय उच्यते ॥७७॥
स्वाधिष्ठानविशुद्धे च, मिलित्वेशानदिग् भवेत् ।
विशुद्धानाहते श्लिष्ट्वा, वायव्यात्मकतां व्रजेत् ॥७८॥
अधोमुखानि चक्राणि, सन्त्येतानि स्थितानि हि ।
सादिविद्या शक्तिकूटं, संवरौघः क्रमः स्मृतः ॥७९॥
उपाम्नायाश्च दिक्कोणा, नैऋत्याग्नीशवायवः ।
परस्परं समाश्लिष्टा, भवन्त्येव न संशयः ॥८०॥
उपाम्नायसमष्टौ तु, वाम-दक्षिण-भेदतः ।
क्रमद्वयं फलापेक्षावशात् संसूचितं ततः ॥८१॥

वामावर्तक्रमस्तत्रानुग्रहाख्य उदीरितः ।
दक्षिणावर्तसंज्ञस्तु, निग्रहाभिध उच्यते ॥८२॥
डाकिनीसहितो ब्रह्मा, मूलाधारे हि तिष्ठति ।[1]
राकिनीसहितो विष्णुः, स्वाधिष्ठाने व्यवस्थितः ॥८३॥
लाकिनीसहितो रुद्रो, मणिपूरे सुरेश्वरि ।
अनाहते महापद्मे, काकिनीसहितो हरः ॥८४॥
विशुद्धाख्ये वसेन्नित्यं, साकिनी च सदाशिवः ।
हाकिनी परशिवश्चाज्ञाचक्रे सुरेश्वरि ॥८५॥
उपर्युक्तः क्रमो वामावर्तेनात्र तु वर्णितः ।
वायव्येशानाग्निकोणा, नैर्ऋत्यश्चेति दक्षिणे ॥८६॥

२८. मकारस्य मात्रायाः शक्तयः —

प्रतीचीस्था तु मातङ्गी, मोहिनी श्रीसरस्वती ।
दक्षिणस्था तथा तारा, भद्रकाली हि नैर्ऋतेः ॥८७॥
बगला दक्षिणस्था महालक्ष्मीः कमला मता ।
भवत्याग्नेय-कोणस्था, महालक्ष्मीश्च सर्वथा ॥८८॥
पूर्वस्य सिद्धिलक्ष्मीश्च, महाकाली (पञ्चवक्त्रा) तथोत्तरा ।
पूज्या चेशानकोणस्था, महाकाली दशानना ॥८९॥
प्रतीच्याश्चण्डमातङ्गी, छिन्नमस्ता तथोत्तरा ।
वायव्ये च समाराध्या, महापूर्वा सरस्वती ॥९०॥
त्रिशक्तियुक्ता चामुण्डा, सम्भूयेमा भवन्ति हि ।
उपाम्नायगताश्चैताः, शक्तयः समुदीरिताः ॥९१॥
अर्धमात्रा नादबिन्दू, ऊर्ध्वाम्नायगता इमे ।
तस्माच्चक्रादिकं नात्र, सूचितं पूर्वसूरिभिः ॥९२॥

२९. अर्द्धमात्रायाः शक्तयः —

अर्द्धचन्द्रस्य मात्रासु, पञ्चदश्यादिसंस्मृता ।
लघुषोडशी षोडशी, तथा च दीर्घषोडशी ॥९३॥

१— मूलाधारे डाकिनी स्याच्छक्तिर्ब्रह्माण्यवस्थिता, इति पाठा० ।

तथा सप्तदशी चैव, पूज्या चाष्टदशी ततः ।
चतुःपूर्वा तु समया, नित्या सैव प्रकीर्तिता ॥९४॥
वर्णिता च चतुष्कूटा, महात्रिपुरसुन्दरी ।
रश्मियुक्ताः शाम्भवाश्च, वर्णिताः क्रमपूर्वकम् ॥९५॥

३०, नादमात्रायाः शक्तयः —

प्रणवस्य ततोऽप्यग्रे, नादे तु पञ्चपङ्क्तिका ।
पञ्चसिंहासना भाति, पराप्रासादनाम्न्यपि ॥९६॥
श्रीप्रासादा यथा वर्ण्या, दशचक्रेश्वरी तथा ।
तथा च षोडशी नित्या, महाषोडशशालिनी ॥९७॥
चक्रेश्वरी ततः साक्षान्महात्रिपुरसुन्दरी ।
अर्द्धचन्द्रस्य मात्रासु, शोभते गुरुपादुका ॥९८॥
सम्मिल्यासां त्रिनवतिर्मातृ़णां भवति स्फुटम् ।
... ... ॥९९॥

३१. बिन्दुमात्रायाः शक्तयः—

बिन्दुमात्रासु वर्ण्यन्ते, सर्वमन्त्रेश्वरी तथा ।
आम्नायानां तथा षण्णां, साकं निर्वाणविद्यया ॥१००॥
नवरत्नकुब्जिकाश्च, पञ्चापि समयाश्च ताः ।
नवरत्नसुन्दरी च, यथा चैव तथा स्मृता ॥१०१॥
तथा षोडशकूटैश्च, महात्रिपुरसुन्दरी ।
अन्ते तत्र च महानिर्वाणेश्वर—भैरवः ॥१०२॥
सङ्केतः किन्तु षोडश्याः, सप्तसंख्या यतः स्मृता ।
तत एव न विश्रान्तिः, षोडश्यां कथिता बुधैः ॥१०३॥
अतश्च क्रमशः सप्तदशी चाष्टदशी तथा ।
महानिर्वाणरूपश्च, प्रणवस्तत्र मन्यते ॥१०४॥
मूलाधारस्तथा स्वाधिष्ठानञ्च मणिपूरकम् ।
अनाहतं विशुद्धञ्च, आज्ञा चेति स्मृतानि षट् ॥१०५॥

मूलाधारादिचक्राणि, दण्डे सङ्कल्प्य देहवत् ।
कार्या तत्तद्देवतानां, यतिभिस्तत्र भावना ॥१०६॥
किं वा देहस्थचक्रेषु, कृत्वा सम्यगुपासनाम् ।
दण्डे विचिन्तयेत् पश्चाद्, यतिस्तासां तदात्मताम् ॥१०७॥
स्थूलसूक्ष्मलिङ्गभेदैस्त्रिधाऽयं देह उच्यते ।
त्रिष्वप्येतेषु चक्राणि, कल्प्यन्ते योगिभिः पृथक् ॥१०८॥
स्थूले पृथ्व्यादितत्त्वानि, प्रकल्प्यन्ते यथाक्रमम् ।
किन्तु तत्र भवेदीषद्भेदः सोऽपि विचार्यताम् ॥१०९॥
मूलाधारे मही तत्र, मणिपूरे जलं तथा ।
स्वाधिष्ठाने भवेद् वह्निरित्यवस्थाविशेषतः ॥११०॥
चण्डिका चैव चामुण्डा, भद्रकाली तथा स्मृता ।
भद्रकाल्या समं दुर्गा, तथा चैव सरस्वती ॥१११॥
तथा मोहिनी मातङ्गी, विपरीतप्रत्यङ्गिरा ।
भद्रकाली महासरस्वती चैव तथा मता ॥११२॥
कात्यायनीसमं दुर्गा, महालक्ष्मीश्च तारिका ।
महालक्ष्मीश्चोग्रचण्डा, यथानाम तथागुणा ॥११३॥
पञ्चवक्त्रा महाकाली, सैवास्ते रक्तदन्तिका ।
दशवक्त्रा महाकाली, चामुण्डा च त्रिशक्तिभिः ॥११४॥
एता मकारगा मात्रा,[1] अष्टादश मताः शुभाः ।
उपाम्नायगता देव्यो, नैरृत्यादिक्रमस्थिताः ॥११५॥
यत्र युग्मादिदिशोरेकः कोणो भवत्यथ ।
अधोमुखे च कमले, प्रत्येकं स्थितिरिष्यते ॥११६॥

३२. कादि-हादि-सादि-कूटानां पाठान्तरं कुण्डलिन्यादिक्रमश्च —

कादिः कुण्डलिनी प्रोक्ता, हादिर्हंसक्रमो मतः ।
कहादि-सादिस्तत्त्वज्ञः, संवरौधिक्रमः स्मृतः ॥११७॥

---

१. मकारमात्राशक्तयः इति पाठान्तरम्

सौम्यैन्द्री पश्चिमाम्नाय-त्रितयात्मा च वाग्भवः ।
कादिः स एव कथितः, कूट आगमवेदिभिः ॥११८॥
याम्याधरोर्ध्वत्रितयाम्नायात्मा कामराजकः ।
हादिः स एव कथितः, कूटस्तन्त्रविशारदैः ॥११९॥

३३. कादिक्रमाणां सृष्ट्यादि-सन्धानम् —

कादि-हादि-सादि-काली-सुन्दरी-तारणीति च ।
पूर्वपञ्चसु सृष्ट्यादौ, सन्दध्यात् सततं बुधः ॥१२०॥
उपाम्नायप्रभेदानां, संस्मृतः शक्तिकूटकः ।
सादिः स एव कथितः, कूटक्रमविवेचकैः ॥१२१॥

३४. कूटत्रयस्य देवताः —

कादिः काली समाख्याता, हादिः श्रीसुन्दरी मता ।
सादिश्च तारिणी प्रोक्ता, क्रमज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१२२॥
कादित्वात् ब्रह्मरूपत्वं, हादित्वाच्छिवरूपता ।
चिच्छक्तिः कादिरूपा स्याद्, हादिश्चिद्ज्ञानगोचरः॥१२३॥
चिदानन्दस्वरूपाख्यं, शिवशक्त्यात्मकं महः ।
कादिस्तु कामराजोऽस्ति, हादिर्लोपा पुरेरिता ॥१२४॥
... ... सम्मत्या पारिभाषिकमीरितम् ॥१२५॥

३५. ब्रह्मचारि-गृहस्थ-वानप्रस्थ-यतीनां श्रीचक्रार्चनक्रमः —

सृष्ट्यर्चनां ब्रह्मचारी, कुरुते बिन्दुयुग्मके ।
प्रथमस्तत्र सोऽस्त्येव, द्वितीयश्चक्रराड् भवेत् ॥१२६॥
सेव्यसेवकभावोऽयं, दासोऽहमिति भावना ।
विसर्गरूपौ द्वौ बिन्दू, सृष्टिरूपावुदाहृतौ ॥१२७॥
स्थित्यर्चने गृहस्थस्तु, बिन्दुत्रितयपूजकः ।
प्रथमस्तत्र सोऽस्त्येव, द्वितीया सहधर्मिणी ॥१२८॥

तृतीयश्चक्रराट् प्रोक्त, ऐक्यमेषां विभावयेत् ।
अनुस्वारो विसर्गश्च, बिन्दुत्रयमुदाहृतम् ॥१२९॥
ऐकमत्यं तु पूजायां, साधकः कुरुते तथा ।
अन्यत्र वै भावयते, सेव्यसेवकभावनाम् ॥१३०॥
वानप्रस्थस्तु संहारपूजां स्वामेकबिन्दुके ।
बिन्दुत्रयं विभाव्यैव, स्वात्मनोऽभेदभावनाम् ॥१३१॥
करोति तत्र श्रीचक्रे, चतूरूपेण संयुताम् ।
अनुस्वारोऽत्र सम्प्रोक्तः, सृष्टि-स्थिति-विर्वाजतः ॥१३२॥
सर्वेषामत्र पिण्डे स्वे, भावयन्नेकरूपताम् ।
सोऽहं सन् सुखमाप्नोति, श्रीचक्रार्चनसंयुतः ॥१३३॥
यतिस्तु दण्डे पिण्डे च, श्रीयन्त्रे चैव भावनाम् ।
पूर्वं कुर्वन् क्रमादग्रे, वर्धते साधकोत्तमः ॥१३४॥
चतुर्गुणां पञ्चगुणां, षड्गुणां सप्तरूपकाम् ।
भावनां भावयन् नित्यं, यतिराड् भवति ध्रुवम् ॥१३५॥
सप्तचक्राणि क्रमशो, नाम्नैतानि भवन्ति हि ।
स्वराट्चक्रं विराट्चक्रं, सम्राट्चक्रं विराजकम् ॥१३६॥
विश्वरूपं शत्रुजिच्च, स्वात्मचक्रं तथैव च ।
एवं सप्तकलारूपं, चक्रराजं यजेद् यतिः ॥१३७॥
चक्रसप्तकमेतत्तु, नाहम्भावेन भावयन् ।
यन्त्रराजे ब्रह्ममुद्रा-पशुमुद्रायुगे तथा ॥१३८॥
दण्डे पिण्डे तथाऽऽज्ञातः, सहस्रारावधि क्रमात् ।
श्रीचक्रे च तथाऽऽज्ञातो, मूलाधारावधि क्रमात् ॥१३९॥
सम्पन्ने श्रीचक्रराजे, सर्वैक्यं साधयेत् तदा ।
सहकारविलोपेन, प्रणवात्मकतां व्रजेत् ॥१४०॥

एवं क्रमात् पञ्चतत्त्वमनस्तत्त्वजयो भवेत् ।
अहन्तत्त्वजयं लब्ध्वा, दिव्यसाम्राज्यदीक्षितः ।।१४१।।

परिव्राट् परितो भाति, सर्वसिद्धिसमन्वितः ।
ऐश्वर्येण समायुक्तो, निग्रहानुग्रह—क्षमः ।।१४२।।
तदैव धर्मरक्षायां, समर्थोऽपि भवेच्च सः ।
ततः परं नैव लोके, किञ्चित् कर्मावशिष्यते ।।१४३।।

गुरोराज्ञां समादाय, मणिपूर—सरोजके ।
दशधा प्रजपेद् विद्यां, सावधानेन चेतसा ।।१४४।।

मूलाधारं समेत्याथ, प्रजपेद्दशधा मनुम् ।
मूलाधारात्तदाज्ञायामागत्य दशधा जपेद् ।।१४५।।

आज्ञाचक्राद् विशुद्धाख्ये, जपेद् दश समाहितः ।
ततः स्वाधिष्ठानमेत्य, दशधा प्रजपेन्मनुम् ।।१४६।।

स्वाधिष्ठानात् समेत्याऽनाहतं तत्र जपेद् दश ।
द्वौ द्वौ सम्मेलयेत् तेन, भवेत् कोणचतुष्टयम् ।।१४७।।

तत्र नैर्ऋत्यमाश्रित्य, वायव्यान्तं प्रपूजयेत् ।।१४८।।
मोहिनी मातङ्गी सरस्वती पश्चिमदिग्गता ।
दक्षिण उग्रतारया, युज्यते जायते तदा ।।१४९।।

नैर्ऋत्याधिष्ठात्री चैषा, चामुण्डेति निगद्यते ।
लोके त्वेषा महामाया, भद्रकालीति गीयते ।।१५०।।
पूर्वस्था कमला देवी, बगला याम्यदिग्गता ।
संश्लिष्टाग्नेयकोणस्य, महालक्ष्मीर्निगद्यते ।।१५१।।
पूर्वस्था सिद्धलक्ष्मीश्च, पञ्चवक्त्रा तथोत्तरा ।
मिलित्वा दशवक्त्राथ, महाकालीति कथ्यते ।।१५२।।
प्रतीच्याश्चण्डमातङ्गी, छिन्नमस्ता तथोत्तरा ।
वायव्यस्य मिलित्वा च, महासरस्वती ननु ।।१५३।।

एतास्तु लम्बिकायां वै, पूजनीया विधानतः ।
बिन्दौ नवार्णमन्त्रश्च, पूजनीयः प्रयत्नतः ॥१५४॥

३६. विराट्-प्रणव-स्वरूपम् —

अयुतावयवैर्युक्तो, ह्यकारस्तत्र वर्णितः ।
शतावयवसंयुक्त, उकारः समुदाहृतः ॥१५५॥

सहस्रावयवैर्युक्तो, मकारस्तु निर्दशितः ।
अर्धमात्रश्च प्रणवो, ह्यनन्तावयवः स्मृतः ॥१५६॥

विराट् प्रणवः सगुणः, संहारो निर्गुणात्मकः ।
उभयात्मक उत्पत्ति-प्रणवः समुदाहृतः ॥१५७॥

यथार्थ-कथनः प्रोक्तोऽभिमानोत्पत्तिकः सदा ।
संहारश्चोपसंहारः, प्रणवः सोऽभिधीयते ॥१५८॥

उभयात्मकत्वादुक्तो, विराट् प्रणवनायकः ।
दीर्घप्लुतविराट् चैवोत्पत्तिप्रणव आहितः ॥१५९॥

प्लुतप्लुत्युपसंहारः, प्रणवोऽत्र निगद्यते ।
षट्त्रिंशत्तत्वसंयुक्तो, विराट्—प्रणव उच्यते ॥१६०॥

जाग्रदाद्याश्चतस्रो या, अवस्थाः समुदीरिताः ।
ताश्चतुर्मात्रके ह्यस्मिन्, योगात् षोडशतां गताः ॥१६१॥

कूटषोडशयोगाच्च, चतुःषष्टिमिताः स्मृताः ।
द्वैविध्यात् पुनरेतासां, प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥१६२॥

अष्टाविंशत्युत्तरकाः, शतं मात्रास्ततः स्मृताः ।
सगुणत्वं निर्गुणत्वं, प्राप्य ब्रह्ममयो ह्ययम् ॥१६३॥

क्वापीत्थं प्राप्यते —

—कलातीतश्चेति तत्र चत्वारः । अकारश्चायुतावयवान्वितः । उकारः शतावयवान्वितः । मकारः सहस्रावयवान्वितः । अर्धमात्रप्रणवोऽनन्तावयवान्वितः । सगुणो विराट्–प्रणवः । संहारो निर्गुणप्रणवः । उभयात्मक उत्पत्तिप्रणवः ।

यथार्थकथन इत्युच्चार्याभिमानोत्पत्तिप्रणवः । सर्वोपसंहारेण संहारप्रणवः । उभयात्मकत्वात् विराट्प्रणवः षोडशमात्रान्वितः । षर्ड्त्रिंशत्तत्त्वयुतः । षोडशमात्रात्मकं कथमित्युच्यते—अकारः प्रथमः । द्वितीय उकारः । मकारस्तृतीयः । अर्धमात्रा चतुर्थी । नादः पञ्चमः । बिन्दुः षष्ठः । कला सप्तमी । शक्तिरष्टमी । शान्तिर्नवमी । समाना दशमी । आत्मनैकादशी । मनोन्मना द्वादशी । वैखरी त्रयोदशी । मध्यमा चतुर्दशी । पश्यन्ती पञ्चदशी । परा षोडशी । इति षोडश–मात्रात्मकः प्रणवः । षोडशमात्रा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयावस्थाभेदैरेकैकमात्रा चतुर्विध (भेद)–मेत्य षोडशमात्राश्चतुः षष्टिभेदमेत्य पुनश्च चतुष्षष्टिभेदैरेकैक–मात्राः । प्रकृतिपुरुषद्वैविध्यमायाद्यष्टाविंशत्युत्तरभेदमात्रा-स्वरूपमाप्नोति । सगुण-निर्गुण एकोऽयं प्रणवः । सर्वाधारः परं ज्योतिरेष सर्वेश्वरो विभुः । सर्वदेवमयः सर्वप्रपञ्चाधारे वर्णितः । सर्वाधारमयः कालः, सदा सद्भिरुदीरितः । इति ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः ।
शरीरं तस्य वक्ष्यामि, स्थानं कालत्रयं तथा ॥१६४॥

तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता, लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः ।
तिस्रो मात्रा अर्धमात्रा, सा प्रत्यक्षा शिवस्य च ॥१६५॥

ऋग्वेदो गार्हपत्यं च, पृथिवी ब्रह्म एव च ।
अकारस्य शरीरं तु, व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥१६६॥

यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च, दक्षिणाग्निस्तथैव च ।
विष्णुश्च भगवान् देव, उकारः परिकीर्तितः ॥१६७॥

सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैव च ।
ईश्वरः परमो देवो, मकारः परिकीर्तितः ॥१६८॥

सूर्यमण्डलमाभाति, ह्यकारश्चन्द्रमध्यगः ।
उकारश्चन्द्रसङ्काशस्तस्य मध्ये व्यवस्थितः ॥१६९॥

मकारश्चाग्निसङ्काशो, विधूमो विद्युता समः ।
तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेया, सोमसूर्याग्नितेजसः ॥१७०॥

शिखा च दीपसङ्काशा, यस्मिंस्तु परिवर्तते ।
अर्धमात्रा तथा ज्ञेया, प्रणवस्योपरि स्थिता ॥१७१॥

पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा, शिखाभा दृश्यते परा ।
नासादिसूर्यसङ्काशा, सूर्यं हित्वा तथा परम् ।।१७२।।
द्विसप्ततिसहस्त्रं च, नाडीर्भित्वा तु मूर्धनि ।
वरदं सर्वभूतानां, सर्वं, व्याप्यैव तिष्ठति ।।१७३।।
कस्य घण्टानिनादः स्याद्यदा लिप्यति शान्तये ।
ओङ्कारस्तु तया योज्यः, श्रुतये सर्वमिच्छति ।।१७४।।
यस्मिन् स लीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते ।
सोऽमृतत्वाय कल्पेत, सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।१७५।।

३७. पञ्च समयाविद्यानां क्रम-व्यवस्था —

द्विधा हि समयाविद्याक्रमः प्रोक्तो महात्मभिः ।
स्थूलस्तु प्रथमस्तत्र, सूक्ष्मश्चैवापरः स्मृतः ।।१७६।।

३८ स्थूलक्रमे चक्राणां तदधिनायिकासमयानां च व्यवस्था —

विशुद्धाख्ये पङ्कजेऽत्र, महात्रिपुरसुन्दरी ।
अनाहते च बगला, कालरात्रिर्मणौ स्मृता ।।१७७।।
स्वाधिष्ठाने जयदुर्गा, छिन्नमस्ता च मूलके ।
आज्ञायां नवरत्नाख्या, कुब्जिका समुदीरिता ।।१७८।।
बिन्द्वादितः सहस्रारे, नवरत्ना हि सुन्दरी ।
स्थूलक्रमे च ध्यातव्या, न्यस्तव्येति शुभं मतम् ।।१७९।।

३९. सूक्ष्मक्रमे चक्राणां तदधिनायिकासमयानां च व्यवस्था —

सूक्ष्मक्रमे च सत्ता स्यात्, समयानां क्रमाद् यथा ।
स्वयम्भूलिङ्गसत्ताऽस्ति, बगलासमया सदा ।।१८०।।
बाणलिङ्गस्य सत्ताऽस्ति, कालरात्रीति नामतः ।
इतरलिङ्गस्य सत्ता, जयदुर्गेति विश्रुता ।।१८१।।
कुलकुण्डलिनीसत्ता, छिन्नमस्ता निगद्यते ।
सर्वसाक्षित्वचैतन्यसत्ता , श्रीसुन्दरी मता ।।१८२।।

४०. आम्नायक्रमेण मूलाधारादिचक्रेषु शक्तीनां भैरवाणां च क्रमः —

मूलाधारादिचक्राणां, शक्तयो भैरवाश्च ये।
आम्नायक्रमतस्तेषां, न्यासध्यानादि कथ्यते ॥१८३॥
मूलाधारे साकिनी स्याच्छक्तिर्ब्रह्मा च भैरवः।
स्वाधिष्ठाने काकिनी स्याच्छक्तिर्विष्णुश्च भैरवः ॥१८४॥

मणिपूरे लाकिनी स्याच्छक्ती रुद्रोऽथ भैरवः।
अनाहते राकिनी स्याच्छक्तिरीश्वरभैरवः ॥१८५॥
विशुद्धे डाकिनी शक्तिर्भैरवश्च सदाशिवः।
आज्ञायां हाकिनी शक्तिर्भैरवोऽथ महेश्वरः ॥१८६॥

सहस्रारे याकिनी स्यात्, कामेशश्चैव भैरवः।
पूर्वोत्तराधराम्नायक्रमोऽयं गदितः शुभः ॥१८७॥

४१. ऊर्ध्वाम्नायपश्चिमाम्नायडाकिन्यादिस्वरूपम् —

ऊर्ध्वपश्चिमयोश्चैव, दक्षोपाम्नाययोस्तथा।
शक्तीनां च शिवानां च, क्रमोऽप्यत्र निगद्यते ॥१८८॥
मूलाधारे डाकिनी स्याच्छक्तिर्ब्रह्मा च भैरवः।
स्वाधिष्ठाने राकिनी स्याच्छक्तिर्विष्णुश्च भैरवः ॥१८९॥

मणिपूरे लाकिनी स्याच्छक्ती रुद्रोऽथ भैरवः।
अनाहते काकिनी स्याच्छक्तिरीश्वरभैरवः ॥१९०॥
विशुद्धे साकिनी शक्तिर्भैरवश्च सदाशिवः।
आज्ञायां हाकिनी शक्तिर्भैरवोऽथ महेश्वरः १९१॥
सहस्रारे याकिनी स्यात्, कामेशश्चैव भैरवः।[1]
... ... ॥१९३॥
षड् शतं च गणेशस्य, षट् सहस्रं प्रजापतेः ॥१९२॥
विष्णवे षट् सहस्रं च, रुद्राय षट् सहस्रकम् ॥१९४॥

---

१. इतः परं सार्धैकः श्लोकः पठितुं न पारितः।

ईश्वराय सहस्रं च, सहस्रं च सदाशिवे[1] ।
सहस्रं गुरवे नित्यमर्पयाम्यजपाजपम् ॥१९५॥
अकारश्च उकारश्च, मकारो बिन्दुरेव च ।
अर्द्धचन्द्रो निरोधश्च, नादो नादान्त एव च ॥१९६॥
शक्तिश्च व्यापिनी चैव, समना उन्मनी तथा ।
समनान्तं पाशजालं, तदूर्ध्वं च परः शिवः ॥१९७॥
अन्तर्यागक्रमश्चैव, बहिर्यागक्रमस्तथा ।
महायागक्रमश्चैव, पूजाखण्डे प्रकीर्तितः ॥१९८॥

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यविरचितः

श्रीयतिदण्डैश्वर्यविधानान्तर्गतस्तत्त्वपादः ।

× × × ×

टिप्पणी : अस्मिन् पादे १९८ श्लोकाः सन्ति तेषु १½ सार्धैकः श्लोकस्तथा-र्धश्लोकद्वयं चापठितं वर्तते ।

1. सदाशिवायेति ।

यतिदण्डैश्वर्यविधाने

साधना-पादः

१. ज्ञान-मन्त्र-कर्म-योगानां पारस्परिकसम्बन्धित्वात्तेषां साधनास्वावश्यकत्वनिरूपणम् —

यतिदण्डे साधनाया, ये ये मार्गाः प्रदर्शिताः ।
तेषां सम्यक्सिद्धिलब्ध्यै, योगज्ञानमपेक्षितम् ।। १ ।।
तत्र शारीरचक्राणां, नाडीनां च विशेषतः ।
ज्ञानं सम्प्राप्य कर्तव्या, सर्वा एव हि साधनाः ।। २ ।।
न हि योगं विना मन्त्रो, योगो मन्त्रं विना न हि ।
कदापि सिद्धिं प्राप्नोति, तस्मादुभयमाचरेत् ।। ३ ।।
न योगेन विना मन्त्रो, न मन्त्रेण विना हि सः ।
द्वयोरभ्यासयोगो हि, ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ।। ४ ।।
कर्मयोगं विना देवि, ज्ञानयोगो न सिद्ध्यति ।
ज्ञानेन कर्मणा वाऽपि, सिद्धिर्भवति नान्यथा ।। ५ ।।

२. योगमाहात्म्यम्—

तस्माद् दोषविनाशार्थमुपायं कथयामि ते ।
योगहीनं न हि ज्ञानं, मोक्षदं भवति ध्रुवम् ।। ६ ।।
योगो हि ज्ञानहीनस्तु, न क्षमो मोक्षकर्मणि ।
तस्माज् ज्ञानञ्च योगञ्च, मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् ।। ७ ।।

३. द्विविधाः सिद्धयः —

द्विविधाः सिद्धयो लोकेऽकल्पिताः कल्पितास्तथा ।
तासु पूर्वास्तु यतिभिः, साधनीया न चापराः ।। ८ ।।

४. अकल्पिताः सिद्धयः —

मन्त्राणां जपतो योगाद्, धारणाध्यानतस्तथा ।
अभ्यासात् सम्पूजनाच्चैव, सिद्ध्यन्ति सिद्धयस्तु याः ।। ९ ।।

अकल्पितास्ताः सम्प्रोक्ताश्चिरकालसुखप्रदाः ।
प्रान्ते ब्रह्मपदप्राप्तावपि साहाय्यकारिकाः ॥१०॥

५. कल्पिताः सिद्धयः —

रसौषधि-क्रियाजालमप्यभ्यासादिसाधनैः ।
सिद्धयन्ति सिद्धयो यास्तु, कल्पितास्ताः प्रकीर्तिताः ॥११॥

६. शरीर-माहात्म्यम् —

दशभिर्वायुभिर्व्याप्तं दशेन्द्रियपरिच्छदम् ।
तदाधार - समायुक्तमुपाम्नाय - विभूषितम् ॥१२॥
शाम्भवी-शाम्भव-युतं, षडन्वय-सुशाम्भवम् ।[1]
चतुष्पीठ-समाकीर्णं, चतुराम्नायदीपनम् ॥१३॥
बिन्दुनाद-महालिङ्गं, शिवशक्ति-निकेतनम् ।
देहः शिवालयः प्रोक्तः, सिद्धिदः सर्वदेहिनाम् ॥१४॥

७. शरीरस्था दश वायवः —

प्राणापानसमानाश्चोदानव्यानौ तथैव च ।
इमे सर्वे शरीरस्थाः, प्रधानाः पञ्च वायवः ॥१५॥
नागः कूर्मोऽथ कृकरो, देवदत्तो धनञ्जयः ।
इमे पञ्च पुनस्तत्र, गदिता उपवायवः ॥१६॥

८. वायूनां स्थानानि —

हृदि प्राणो गुदेऽपानः, समानो नाभिमण्डले ।
उदानः कण्ठदेशे तु, व्यानः सर्वशरीरगः ॥१७॥

९. वायूनां वर्णाः —

अथ वर्णास्तु पञ्चानां, प्राणादीनामनुक्रमात् ।
रक्तवर्णो मणिप्रख्यः, प्राणवायुः प्रकीर्तितः ॥१८॥
नीलरक्तोऽपानवायुरिन्द्रगोपसमप्रभः ।
समानस्तु द्वयोर्मध्ये, गोक्षीरसदृशप्रभः ॥१९॥

१. महाऽवनम् इति पाठा० ।

अपाण्डुर उदानश्च, व्यानो ह्यर्चिः समप्रभः ।
ध्यानार्थमेते वर्णास्तु, चिन्तनीया विशेषतः ॥२०॥

१०. प्राणादिवायूनां स्थानानि —

आस्य-नासिकयोर्मध्यं, हृदयं नाभिमण्डलम् ।
पादाङ्गुष्ठमिति प्राणस्थानानि द्विजसत्तम ॥२१॥
अपानश्चरति ब्रह्मन्, गुदमेढ्रोरुजानुषु ।
समानः सर्वगात्रेषु, सर्वव्यापी व्यवस्थितः ॥२२॥
उदानः सर्वसन्धिस्थः, पादयोर्हस्तयोरपि ।
व्यानः श्रोत्रोरुकटिषु, गुल्फस्कन्धगलेषु च ॥२३॥
नागादिवायवः पञ्च, त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः ।
तस्मात् स्थानानि तान्येव, ज्ञातव्यानि क्रमात् सदा ॥२४॥

११. प्राणादिवायूनां कार्याणि —

तुन्दस्थजलमन्नञ्च, रसादीनि च सर्वशः[१] ।
तुन्दमध्यगतः प्राणः, कुरुते वै पृथक् पृथक् ॥२५॥
अपानवायुर्मूत्रादेः, करोति च विसर्जनम् ।
प्रसवञ्चापि कुरुते, वायुरेष निरन्तरम् ॥२६॥
प्राणापानादिचेष्टास्तु, क्रियन्ते व्यानवायुना ।
उज्जीर्यते शरीरस्थमुदानेन नभस्वता ॥२७॥
पोषणादिशरीरस्थं समानः कुरुते सदा ।
नागादीनाञ्च वायूनां, कार्याण्यपि वदाम्यहम् ॥२८॥
उद्गारादिक्रियां नागः, कूर्मो नेत्रादिमीलनम् ।
कृकरः क्षुत्करो ज्ञेयो, देवदत्तो विजृम्भकृत् ॥२९॥
मृतगात्रस्य शोभादि-कृदुक्तोऽस्ति धनञ्जयः ।
न जहाति मृते वापि, शरीराणि धनञ्जयः ॥३०॥[२]

---

१. रसादींश्च समीकृतान् इति पाठा० । २. इतोऽग्रे पद्यमेकमसंख्याकं लुप्तमस्तीति मूलसङ्केताज्ज्ञायते ।

प्राणिनो भौतिके देहे, क्रियामात्रा भवन्ति हि ।
वायोस्साहाय्यतस्तास्ताः, तां विना किमपीह न ।।३१।।
वायोर्वशाद् मनोवश्यं, तत इन्द्रियसंयमः ।
तस्माद् वायोर्वशीकारमुत्तमं योगसाधनम् ।।३२।।
इति विज्ञाय वायूनां, सर्वा ध्यानादिकाः क्रियाः ।
गुरूपदेशतो ज्ञेया, योगसिद्ध्यै महात्मभिः ।।३३।।

१२. दशेन्द्रिय-परिच्छदः —

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च, रसनं घ्राणमेव च ।
वाक्पाणि-पादाः पायुश्च, तथोपस्थ इति क्रमात् ।।३४।।
दशेन्द्रिय-परीवारो, ज्ञानकर्मविभागतः ।
सुप्रसिद्धोऽस्ति सर्वत्र, ज्ञात्वा तं योगमाचरेत् ।।३५।।
समीकृतान्··· ··· ··· ···।।३६।।
··· ··· ··· ··· ··· ···।।३७।।[1]

१३. शरीरस्थाधारादिचक्रवर्णनम् (कालीकल्पे) —

अथ चक्राणि वक्ष्यन्ते, स्थितिर्येषां शरीरगा ।
पूर्वं ह्यधः सहस्रारं विषुवं मूलचक्रकम् ।।३८।।
स्वाधिष्ठानं तदग्रे तु, ततस्तु मणिपूरकम् ।
स्वस्तिकं चैवानाहतं, विशुद्धं चैव लम्बिका ।।३९।।
आज्ञाचक्रमिति प्रोक्तान्यूर्ध्ववक्त्राणि वर्णणि ।
स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतमथापि वा ।।४०।।
हृदि स्थाने स्थितं पद्मं, तस्य वक्त्रमधोमुखम् ।
विशुद्धं चेति चक्राणि, सन्त्यधोमुखगानि हि ।।४१।।
एवं द्वादश चक्राणि, कालीकल्पे भवन्ति वै ।
आज्ञाचक्रं विभक्तं स्यात्, कल्पयोरुभयोरपि ।।४२।।

१. अत्र पद्यद्वयमपठितमस्ति ।

कालीकल्पे च सुन्दर्याः, कल्पे चैव विशेषतः ।
... ... ॥४३॥

१४. सुन्दरीकल्पे —

सुन्दरीकल्पचक्राणां, संख्या षोडश विद्यते ।
तेषां नामानि वर्ण्यन्ते, योगतन्त्रानुसारतः ॥४४॥
आज्ञाचक्रं मनश्चक्रं, सप्तकोषाख्यमेव च ।
बिन्दुः कला रोधनी च, नादो नादान्त एव च ॥४५॥
शक्तिश्च व्यापिका चैव, समनाग्रे तथैव हि ।
गुरोः पद्मं ततोऽग्रे च, दलैर्द्वादशभिर्युतम् ॥४६॥
अधोमुखं मनश्चक्रं, पत्रैर्द्वादशभिर्युतम् ।
उन्मनी षोडशदलमधोवक्त्रं च नीरजम् ॥४७॥
महाबिन्दुस्तदग्रे च, चक्राण्येतानि सन्ति वै ।
एतान्यावृत्य लसति, सहस्रारमधोमुखम् ॥४८॥
आज्ञाचक्रादूर्ध्वभाग, एकैकाङ्गुलकोपरि ।
स्थितिः षोडशचक्राणां, सर्वदा योगिसम्मता ॥४९॥
महाषोडश्येवमेव, कूटैः षोडशभिर्युता ।
आम्नायक्रमतश्चैषां, ध्यानं कर्तव्यमेव हि ॥५०॥

(इतः परं श्लोकसंख्या ५१ तः ५४ यावत् पद्यान्यपठितानि सन्ति) ।

मूलाधारं समाधारमधराम्नाय - रूपकम् ।
स्वाधिष्ठानं सृष्टिचक्रं, पूर्वाम्नाय-स्वरूपकम् ॥५५॥
मणिपूरे स्थितं चक्रं, दक्षिणाम्नाय-रूपकम् ।
अनाहतं स्यात् संहारचक्रं पश्चिममार्गगम् ॥५६॥
विशुद्धं स्यादनाख्याख्यमुत्तराम्नाय - रूपकम् ।
आज्ञादिकं च भासा स्यादूर्ध्वाम्नायक्रमात्मकम् ॥५७॥
... ... ॥५८॥

१५. चक्राणामधिष्ठात्र्यो देवताः —

अधिष्ठात्र्यः प्रवक्ष्यन्ते, नामान्यासां यथाक्रमम् ।
यासां स्मरणमात्रेण, सिद्धिर्भवति वै ध्रुवा ॥५९॥
[1]मणिपूरस्याधिष्ठात्री, देवी दक्षिणकालिका ।
महोग्रतारा देवी च, मूलाधारस्य नायिका ॥६०॥
आज्ञाचक्रस्याधिष्ठात्री, बालात्रिपुरसुन्दरी ।
अधिष्ठात्री विशुद्धस्य, गुह्यकाली च देवता ॥६१॥
स्वाधिष्ठानगता देवी, स्वामिनी भुवनेश्वरी ।
अनाहतस्याधिष्ठात्री, देवता कुब्जिका स्मृता ॥६२॥
नैर्ऋत्यकोणाधिष्ठात्री, देवता भद्रकालिका ।
या देवी भद्रकाली च, चामुण्डा सैव कथ्यते ॥६३॥
महालक्ष्मीर्महादेवी, त्वग्निकोणस्य नायिका ।
ईशानकोणाधिष्ठात्री, महाकाली दशानना ॥६४॥
महासरस्वती देवी, वायुकोणस्य नायिका ।
समष्ट्या तु चतस्रस्तास्तुर्यशक्तिसमन्विताः ॥६५॥
उपाम्नायसमाश्लिष्टाश्चामुण्डा नायिका भवेत् ।
सम्भूय देव्यस्ताः सर्वा, नवार्णं भवति ध्रुवम् ॥६६॥
पश्चिमे तु समाम्नाये, साकं भवति कुब्जिका ।
एवमाम्नायदेवीनां, ध्यानं चक्रेषु सिद्धिदम् ॥६७॥

(इतः परं ६८ तः ७० यावत् पद्यान्यपठितानि सन्ति ।)

प्रयोगकाले मन्त्राणामृषिच्छन्दांसि दैवतम् ।
विनियोगं शक्तिबीजे, स्मरेन्नो चेद् वृथा फलम् ॥७१॥

१—अत्र यद्यपि मणिपूरचक्रं दक्षिणाम्नायप्रविष्टं तथापि श्रीमातुः सादिकूटाख्यविश्रान्तिददीक्षाकल्पानुसारेण भक्तिभावस्य प्रवेशद्वारत्वात् मणिपूरं प्रथमं सन्निवेश्य प्रोक्तदीक्षाक्रममाश्रित्येदं बोद्धव्यम् ।

स्वाधिष्ठानं सृष्टिचक्रं, प्रकल्प्य क्रमयोगतः ।
देवतास्तेषु सञ्चिन्त्या, यतिभिर्मोक्षकांक्षिभिः ॥७२॥
अथ सृष्टयादिचक्रेषु, सञ्चिन्त्या वर्णदेवताः ।
साधकानां सिद्धिहेतोरुद्दिश्यन्ते क्रमादिह ॥७३॥
दक्षिणः साधरश्चोर्ध्वमुत्तरं पूर्व एव च ।
ततः पश्चिम इत्यत्र, बोध्यः सामान्यतः क्रमः ॥७४॥

१६. सृष्टिचक्रस्थ–शक्तीनां नामानि :—

[1]सृष्टिचक्रे क्रमान् न्यस्या, आद्याश्यामा च दक्षिणा ।
तत एकजटा पश्चान्महोग्रा तारिणी ततः ॥७५॥
ततश्च बाला त्रिपुरा, बालात्रिपुरसुन्दरी ।
ततः षडक्षरी हादिर्महात्रिपुरसुन्दरी ॥७६॥
सिद्धिलक्ष्मीः कामकला, चोन्मनी भुवनेश्वरी ।
समया कुब्जिका पश्चात्, तथा च वज्रकुब्जिका ॥७७॥
ततः पञ्चाक्षरी कादिर्महात्रिपुरसुन्दरी ।
ततः परं भद्रकाली, तथा चैव सरस्वती ॥७८॥
महासरस्वती पश्चात्, चामुण्डा चोग्रचण्डिका ।
चतुर्वर्णा ततः सादिर्महात्रिपुरसुन्दरी ॥७९॥
... ... ॥८०॥

१७. स्थितिचक्रस्थशक्तीनां नामानि —

स्थितिचक्रे क्रमान्न्यस्याः, श्यामा काली च दक्षिणा ।
महोग्रतारा तत्पूर्वं, ध्येया नीलसरस्वती ॥८१॥
पश्चाद् बालासुन्दरी च, ततो बालाषडक्षरी ।
भरतोपासिता गुह्यकाली कामकला ततः ॥८२॥

---

१. विन्यस्तक्रमान्तःपातिजपानुसारेण वा इदं कथनं सृष्टयाम्नायसम्बन्धतश्च सृष्टित्वव्यवहार इति विभावनीयम् ।

ततः पूर्णेश्वरी ध्येया, ततश्च भुवनेश्वरी ।
वीरपूर्वा कुब्जिका च, तथा च वज्रकुब्जिका ॥८३॥
उग्रतारा महालक्ष्मीरष्टाविंशतिवर्णका ।
ततः परं महालक्ष्मीरन्या ध्येया नवाक्षरी ॥८४॥
ततः परञ्च चामुण्डा, पश्चात् कात्यायनीत्यपि ।
... ... ॥८५॥

१८. संहारचक्रस्थशक्तीनां नामानि —

संहारे सिद्धिकाली स्यात्तथा दक्षिण-कालिका ।
ततो महोग्रा तत्पूर्वं, महानील-सरस्वती ॥८६॥
ततो बाला भैरवी स्यात्, ततो बाला षडक्षरी ।
श्रीरामोपासिता गुह्यकाली कामकला ततः ॥८७॥
त्र्यक्षरी भुवना पश्चात्, पञ्चार्णा भुवनेश्वरी ।
अघोरकुब्जिका वज्रकुब्जिका कर्मकुब्जिका ॥८८॥
ततः परं क्रमाद् ध्येया, सप्तार्णा रक्तदन्तिका ।
[1]मन्वर्णात्मा महाकाली, महाकाली [2]नवाक्षरी ॥८९॥
भद्रकाली चामुण्डा च, चतुर्वर्णा स्मृताः क्रमात् ।
... ... ॥९०॥
... ... ॥९१॥

सिद्धिलक्ष्मीः सिद्धिपूर्वा, कराली सिद्धिकालिका ।
सिद्धिः कपालिनी न्यस्या, गुह्या कामकलात्मिका ॥९२॥
... ... ॥९३॥

पञ्चदशी षोडशी च, गायत्री ब्रह्मरूपिणी ।
श्रीमहाषोडशी पूर्ण-शाम्भवञ्च षडन्वयम् ॥९४॥
सर्वाधिकाररूपञ्च, गायत्री च चतुष्पदा ।
पशुपतत्रयं चैव, महापूर्णाभिषेचनम् ॥९५॥

---

१. एषा पञ्चानना । २. एषा दशानना । ३. अत्र पद्यद्वयं त्रयं वा भ्रष्टमित्यस्पष्टत्वम् ।

१९. प्रणवस्य षोडशमात्राणां कूटरूपत्वम्[1] —

अकारः प्रथमः प्रोक्त, उकारश्च द्वितीयकः ।
तृतीयोऽथ मकारः स्यादर्धमात्रा तुरीयकः ॥९६॥
बिन्दुः पञ्चमकूटः स्यान्नादः षष्ठ उदीरितः ।
कला हि सप्तमः कूटः, शक्तिरष्टम एव च ॥९७॥
नवमः शान्तिराख्यातो, दशमः समना स्मृतः ।
आत्मा त्वेकादशः प्रोक्तो, द्वादशश्च मनोन्मना ॥९८॥
त्रयोदशो वैखरी च, मध्यमा स्याच्चतुर्दशः ।
पश्यन्ती स्यात् पञ्चदशः, षोडशश्च परा भवेत् ॥९९॥
एवं षोडशकूटात्मा, स्मर्तव्यः प्रणवः सदा ।
... ...॥१००॥

२०. नाडीभिश्चक्रनिर्मिति-निरूपणम् —

देहस्य कार्यक्षमता-साधनार्थं शरीरगाः ।
अनन्ता नाडिका व्याप्ता, मस्तिष्कान्निःसरन्ति याः ॥१०१॥
अङ्गप्रत्यङ्गकार्याणि, साधयन्ति स्वभावतः ।
सार्धलक्षत्रयं नाड्यस्तासु योगे प्रतिष्ठिताः ॥१०२॥
तत्रापि नाड्यः सम्प्रोक्ताः, सहस्राणि द्विसप्ततिः ।
एतासु मुख्याः षोडश, चित्रा-प्रभृतिसंज्ञिकाः ॥१०३॥
यासामुत्पत्तिभूरेका, सुषुम्ना नाडिका मता ।
प्रधानाः प्राणवाहिन्यो, भूयस्तत्र दश स्मृताः ॥१०४॥
तत्रापि ब्रह्मनाडी च, चित्रा वज्रा तथैव च ।
एतास्तिस्रो मिलित्वैव, सुषुम्नारूपतां गताः ॥१०५॥
लघुमस्तिष्कतो नीचैः, सुषुम्नानाडिका स्थिता ।
सैव प्रधाना सर्वासां, नाडीनां त्र्यग्निरूपिणी ॥१०६॥

---

१. सुन्दरीकल्पोक्तध्यानपद्धत्या अत्र यद्यपि पुनरुक्तं प्रतीयते तथापि सादिकूट-दीक्षितस्यापि प्रणव एव विश्रान्तिरिति पुनः स्मारयति भगवान् सूत्रकारः । नहि तेषु भ्रान्तिरस्ति लोकानुग्रहपरायणेषु इति ध्येयम् ।

तत एव विनिर्यान्ति, वामदक्षिणभागयोः ।
एकत्रिंशद् ह्येकत्रिंशन्नाडिकाः सूक्ष्मरूपतः ॥१०७॥
ग्रीवाप्रदेशे ह्यष्टौ च, तासु नाड्यो व्यवस्थिताः ।
कथ्यन्तेऽनुग्रीविकास्ता, नाडिका योगवित्तमैः ॥१०८॥
पृष्ठदेशे द्वादश च, स्थिताः सन्ति तथेतराः ।
उच्यन्तेऽनुपृष्ठिकास्ता, नामतः किल मेरुजाः ॥१०९॥
कटिप्रदेशे वर्तन्ते, पञ्च नाड्यस्तु संस्थिताः ।
कथ्यन्तेऽनुकटिकास्ता, योगशास्त्रविचक्षणैः ॥११०॥
त्रिकप्रदेशे पञ्चाथ, नाडिकाः सन्ति संस्थिताः ।
अनुत्रिकास्ताः प्रोच्यन्ते, तथैका त्रिकशीर्षकी ॥१११॥
एवं द्वाषष्टिनाडीनां, वामदक्षिणभागयोः ।
गच्छन्तीनां क्रमः प्रोक्तः, सुषुम्नाजनितात्मनाम् ॥११२॥
योगादनुग्रीविकाणां, विशुद्धं जायते ध्रुवम् ।
मणिपूरोऽनुकटिकानाडीभिर्निर्मितिं व्रजेत् ॥११३॥
... ... ॥११४॥
तथैवानुपृष्ठिकानां, नाडीनां षट्कयोगतः ।
अनाहताख्यं चक्रं तु, द्वादशारं भवत्यहो ॥११५॥
ताभ्य एवावशिष्टानां, पञ्चानां सर्वयोगतः ।
मणिपूराभिधं चक्रं, दशारं भवति ध्रुवम् ॥११६॥
शिष्टयाऽप्येकया युक्तं, कटिनाडीद्वयेन वै ।
स्वाधिष्ठानाभिधं चक्रं, भवत्यथ च षड्दलम् ॥११७॥
तृतीयायाश्चतुर्थ्याश्च, कटिनाड्याः प्रमेलनात् ।
मूलाधाराभिधं चक्रं, समुद्गच्छति निश्चितम् ॥११८॥
कटिभागस्यावशिष्टा, नाडिकैका तथाऽपरा ।
अनुत्रिकायाः पञ्चाथ, त्रिकशीर्षस्य चैकिका ॥११९॥

सर्वा मिलित्वा लोकानां, सप्तकं साधयन्ति हि ।
अत्राप्यूर्ध्व - सहस्राराच्चक्राण्यूर्ध्वमुखानि वै ॥१२०॥
तथैवाधःसहस्राराज्जायन्तेऽधोमुखान्यपि ।
तेषामुत्थितिनियमः, संक्षेपादिह कथ्यते ॥१२१॥
अनुग्रीवानुपृष्ठिभ्यामधोवक्त्रसमुद्गतिः ।
अधोमुखं विशुद्धारं, चक्रमाद्यं निगद्यते ॥१२२॥
अनुपृष्ठ्यनुकटिका — नाडीयोगादधोमुखम् ।
अनाहताख्यमपरं, चक्रं तत्र द्वितीयकम् ॥१२३॥
सविशुद्धानाहतयोर्मणिपूरस्य च क्रमात् ।
स्वाधिष्ठानस्य चैवाधः, परस्परसुयोगतः ॥१२४॥
अधश्चक्राणि तावन्ति, भवन्तीह विशेषतः ।
तान्येव कोणचक्राणि, गदितानि महर्षिभिः ॥१२५॥
तत्र नाड्यौ द्वे भवतः, शुक्र-सम्बन्धगे ततः ।
चित्राख्या सीवनी नाडी, शुक्रमोचनकारिणी ॥१२६॥
निरुद्धा सीवनी नाडी, शुक्रसंरोधकारिणी ।
मनःसंयमनी नाडी, तदा सक्रियतां गता ॥१२७॥
आकर्षति मनः सा तु, समाधिं प्रति साधिका ।
यावन् मनःसंयमनी, सक्रियत्वं न गच्छति ॥१२८॥
तावन्निरुद्धा कर्तव्य-पालनं कुरुते न हि ।
... ...॥१२९॥

२०. षोडशनाडीनां नामानि स्थाननिरूपणञ्च —

सुषुम्नाया वामभागे, मेधा[१] च प्राण[२]-धारिणी ।
सर्वज्ञान[३]-प्रदा चैव, मनःसंयमनी[४] तथा ॥१३०॥
विशुद्धा[५] निरुद्धा[६] चित्रा[७], वज्रा[८] च ब्रह्मनाडिका[९] ।
एता नव स्थिता नाड्यस्तथा दक्षिणभागके ॥१३१॥

१. इतोऽग्रे पद्यचतष्टयमभवदित्यनुमितं किन्तु स्पष्टताया अभवादत्र संख्यायोगो न कृतः ।

वायुसञ्चारिणी[10] तेजःशुष्करी[11] बलपुष्टिकृत्[12] ।
बुद्धिसञ्चारिणी[13] चैव, ज्ञानजृम्भणकारिणी[14] ॥१३२॥
सर्वप्राणहरा[15] चैव, पुनर्जीवनकारि[16]णी ।
एताः सप्त स्थिता नाड्यो, यथानाम तथागुणाः ॥१३३॥
सर्वप्राणहरा चैव, पुनर्जीवनकारिणी ।
हस्तयोः पादयोश्चैवाङ्गुष्ठयोश्च स्थितिं गते ॥१३४॥
बुद्धिसञ्चारिणी चैव, ज्ञानजृम्भणकारिणी ।
तर्जनी मध्यमा चैते, स्थितिमत्यौ सदैव हि ॥१३५॥
मनःसंयमनी चैव, सर्वज्ञानप्रदायिनी ।
अनामिका-कनिष्ठासु, स्थितिमत्यौ सदैव हि ॥१३६॥
ब्रह्मनाडी तथा प्राणधारिणी नाम नाडिका ।
मनःसंयमनी चैव, वायुसञ्चारिणी तथा ॥१३७॥
चित्रा निरुद्धा च कुहूर्वज्रेत्यष्टौ क्रमात् पुनः ।
जिह्वायां च तथोपस्थे, सर्वदा यान्ति नाडिकाः ॥ [अ][1]

२२. जप-प्रकाराः —

हस्ते च दक्षिणे पश्चाच्चिन्तयेन्मनसा शिवम् ।
चिन्तयेच्च गुरुं मूर्ध्नि, यथा वर्णादिकं भवेत् ॥१३८॥
मन्त्रं ध्यायेत् कण्ठमध्ये, पीतवर्णं हिरण्मयम् ।
महामायां च हृदये, स्वात्मानं गुरुपादयोः ॥१३९॥
आज्ञाचक्रे ततः पश्चाद्, गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः ।
देव्याश्चाप्येकतां नीत्वा, सुषुम्णावर्त्मना ततः ॥१४०॥
एवं विभाव्य तद्रूपं, तच्चक्रं प्रतिलङ्घयेत् ।
सर्वचक्रे महामायां, क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः ॥१४१॥
लम्बयेन्मूलमन्त्रेण, चादिषोडशचक्रकम् ।
आदिषोडशमध्यस्थां, साधकानन्ददायिनीम् ॥१४२॥

---

१. गणनारहितमिदं पद्यमन्यत्र विशिष्य प्राप्यते ।

सञ्चिन्त्य साधको देवीं, जपकर्म समारभेत् ।
भ्रुवोरुपरि नाडीनां, तिसृणां व्रत उच्यते ।।१४३।।
तद्व्रतं त्रिपथस्थानं, षट्कोणं चतुरङ्गुलम् ।
रक्तञ्च कुलयोगज्ञैराज्ञाचक्रमितीरितम् ।।१४४।।
कण्ठे तिसृणां नाडीनां, वेष्टनं विद्यते नृणाम् ।
सुषम्णेडापिङ्गलान्तं, षट्कोणं तत्षडङ्गुलम् ।।१४५।।
तत्षट्चक्रमिति प्रोक्तं, शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम् ।
तिसृणामपि नाडीनां, हृदये चैकता भवेत् ।।१४६।।
तत्स्थानं षोडशारं स्यात्, सप्ताङ्गुलप्रमाणतः ।
तत्पीतमुक्तं योगज्ञैरपि षोडशचक्रकम् ।।१४७।।
ध्येयानामथ मन्त्राणां, चिन्तितस्य जपस्य च ।
यस्मादाद्यं तु हृदयं, तस्मादादि निगद्यते ।।१४८।।
गुरुं च देवतां मन्त्रं, तथा स्वात्मानमेव च ।
एकीभूतमिति ध्यायेदादि-षोडशचक्रके ।।१४९।।
एकचित्तः प्रशान्तात्मा, ह्यक्षसूत्रकरः शुचिः ।
भुग्नग्रीवोन्नतः शान्तः, कण्डून्मीलनवर्जितः ।।१५०।।
सविसर्गं समात्रं च, सबिन्दुं चाक्षरं स्फुटम् ।
न द्रुतं नाऽपि विश्रान्तं, क्रमान्मन्त्रं जपेत्सुधीः ।।१५१।।
अतिद्रुतो व्याधिहेतुरतिदीर्घो वसुक्षयः ।
अक्षराक्षरसंयुक्तो, जपेन्मौक्तिकपङ्क्तिवत् ।।१५२।।
तन्निष्ठस्तद्गतप्राणस्तच्चित्तस्तत्परायणः ।
तत्पदार्थानुसन्धानं, कुर्वन्मन्त्रं शनैर्जपेत् ।।१५३।।
जपाच्छ्रान्तः पुनर्ध्यायेद्, ध्यानाच्छ्रान्तः पुनर्जपेत् ।
जपध्यानादिसंयुक्तः, क्षिप्रं मन्त्रः प्रसिध्यति ।।१५४।।
अतिह्रस्वे व्याधिहेतुरतिदीर्घे तपःक्षयः ।
प्रजपेत् प्राणसाम्येन, ततः सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।।१५५।।

... ... ।

नान्यथा सिद्धिमाप्नोति, हास्यमाप्नोति सुन्दरि ! ॥१५६॥
ततो वै ज्ञानशूलेन, ग्रन्थीन् भिन्दन् समुच्चरेत् ।
भित्त्वा हृदयग्रन्थि तु, गतः शब्दः प्रजायते ॥१५७॥
य आकाशसमायोगाद्, घोषशब्दोपमो भवेत् ।
श्रवणाङ्गुलिसंयोगाद्, यः शब्दः सम्प्रवर्तते ॥१५८॥
दीप्तवह्निस्वननिभः, स नादो घोष उच्यते ।
कण्ठस्थो विरमेच्छब्दः, कण्ठं प्राप्य वरानने ॥१५९॥
भिन्दन् स कण्ठदेशं तु, शब्दो धुगधुगायते ।
तालुमध्यगतः प्राणो, यदा भवति सुव्रते ! ॥१६०॥
भिन्दतस्तालुग्रन्थिं तु, शब्दो धुमधुमायते ।
अष्टधा तु स देवेशि !, व्यक्तः शब्दः प्रकीर्तितः ॥१६१॥
घोषो रावः स्वनः शब्दः, स्फोटाख्यो ध्वनिरेव च ।
झङ्कारो ध्वङ्कृतश्चैवेत्यष्टौ शब्दाः प्रकीर्तिताः ॥१६२॥
भ्रुवोर्मध्यं यदा गच्छेत्, स्फोटशब्दस्तु जायते ।
बिन्दुं भेदयतो देवि ! शब्दो धुमधुमायते ॥१६३॥
कपिवै नारिकेलेन, ह्याचार्यः सह बिन्दुना ।
अभिन्नेन कुतो मोक्षः, स बाह्याभ्यन्तरं प्रिये ॥१६४॥
भित्त्वा बिन्दुं ततो देवि !, अर्धचन्द्रं विभेदयेत् ।
भिद्यतश्चार्धचन्द्रस्य, भालो झिमिझिमायते ॥१६५॥
अर्धचन्द्रं तु भित्त्वा वै, भेदयेत्तु निरोधिनीम् ।
तस्यास्तु भिद्यमानायाः, शब्दो मिमिमिमायते ॥१६६॥
अष्टधाऽनाहतः प्रोक्तः, शून्यादि-प्रतिभेदतः ।
शून्यं स्पर्शस्तथा नादो, ध्वनिर्बिन्दुस्तथैव च ॥१६७॥
शक्तिर्जीवाक्षरं चेति, ह्याष्टधाऽनाहतः स्मृतः ।
निरोधिनीं भेदयित्वा, ततो नादं व्रजेद् बुधः ॥१६८॥

वंशशब्दसमः शब्दस्तत्र सूक्ष्मः प्रजायते ।
भेदयेन्नादसंस्थानं, ब्रह्मरन्ध्रं सुदुर्भिदम् ॥१६९॥
भिद्यतो ब्रह्मरन्ध्रस्य, शब्दः शुभशुभायते ।
शक्तिमध्यगतः प्राणो, वंशनादेन संनिभः ॥१७०॥
साधको भेदयेच्छक्तिं, दुर्भेद्यां सर्वयोगिनाम् ।
भिद्यते च यदा शक्तिः, शाब्दः शुभशुभस्ततः ॥१७१॥
शक्तिं भित्त्वा ततो देवि, तच्छेषं व्यापिनी भवेत् ।
अनुभूतो भवेत्तत्र, स्पर्शो यद्वत् पिपीलिका ॥१७२॥
भित्त्वा वै व्यापिनीं देवि, समनायां मनस्त्यजेत् ।
मनसा तु मनस्त्यक्त्वा, जीवः केवलतां व्रजेत् ॥१७३॥
भित्त्वा क्रमेण सर्वाणि, ह्युन्मनान्तानि यानि तु ।
पूर्वोक्तलक्षणैर्देवि, त्यक्त्वा स्वच्छन्दतां व्रजेत् ॥१७४॥
जायते चोन्मनस्त्वं हि, देहेनानेन साधके ।
सङ्क्रामेत् परदेहेषु, क्षुत्तृड्भ्यां बाध्यते नहि ॥१७५॥
अतीतानागतं चैव, त्रैलोक्ये यत्प्रवर्तते ।
प्रत्यक्षं तद् भवेत्तस्य, सर्वज्ञत्वञ्च जायते ॥१७६॥
मनः संहृत्य विषयान्, मन्त्रार्थगतमानसः ।
न द्रुतं न विलम्बत्वं, जपेन्मौक्तिकपंक्तिवत् ॥१७७॥

जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशु-वाचिकैः ।
धिया यदक्षरश्रेणीं, वर्ण-स्वर-पदात्मिकाम् ॥१७८॥
उच्चरेदर्थमुद्दिश्य, मानसः स जपः स्मृतः ।
जिह्वोष्ठौ चालयेत् किञ्चिद् देवतागतमानसः ॥१७९॥
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ।
षट्कर्मकृद् वाचिकः स्यात्, कायिकः कर्मसिद्धिकृत् ॥१८०॥
मानसः साधयेन्मोक्षं, ततोऽन्यः क्षुद्रकर्मकृत् ।
जपेन देवता नित्यं, स्तूयमाना प्रसीदति ॥१८१॥

जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः ।
कृत्वा जपं पुरा चैवं, तेजोरूपं समर्पयेत् ॥१८२॥
देवस्य दक्षिणे हस्ते, कुशपुष्पार्घवारिभिः ।

शक्तिविषये तु—

... ... ॥१८३॥
एवं जपं पुरा कृत्वा, गन्धाक्षतकुशोदकैः ।
जपं समर्पयेद् देव्या, वामहस्ते विचक्षणः ॥१८४॥

(पाठान्तरम्)—

चित्रा वज्रा च मेधा च, ब्रह्म-प्राणधरे तथा ।
सर्वज्ञानप्रदा चैव, मनःसंयमनी तथा ॥१८५॥
विशुद्धा च निरुद्धा च, वायुसञ्चारिणी तथा ।
तेजःशुष्करी च ततो, बलपुष्टिकरी तथा ॥१८६॥
बुद्धिसञ्चारिणी चैव, ज्ञानजृम्भणकारिणी ।
सर्वप्राणहरा चैव, पुनर्जीवनकारिणी ॥१८७॥
षोडशैतास्तु यो नाडीर्ज्ञात्वा प्राणप्रयोगतः ।
भिनत्ति स महायोगी, साक्षाद् ब्रह्ममयो भवेत् ॥१८८॥

२३. षट्चक्रेषु जपफलानि —

भूमिकामो जपेन्मन्त्रं, मूलाधारे चतुर्दले ।
स्वाधिष्ठाने जपादेव, महेन्द्रो जायतेऽचिरात् ॥१८९॥
मणिपूरे जपादेव, भवेत् स्वर्गस्य भाजनम् ।
अनाहते महापद्मे, जपाद् ब्रह्म परं व्रजेत् ॥१९०॥
विशुद्धाख्ये जपादेव, विष्णुलोके वसेद् ध्रुवम् ।
आज्ञाचक्रे जपाद् देवि, महाद्वीपे वसेत् सदा ॥१९१॥
सहस्रारे स्थिरो भूत्वा, यदि चाष्टशतं जपेत् ।
तत्फलात् कोटिभागैकं, भागं चान्यन्न विद्यते ॥१९२॥

पृथिव्यामव्ययो देही, भवत्येव न संशयः ।
... ... ॥१९३॥

२४. दशचक्रेषु जपध्यानफलानि —

मूलाधारे जपाद् ध्यानान्मन्त्रस्य चिन्मयं वपुः ।
जायते च ततो ध्येयस्यापि चिन्मयरूपता ॥१९४॥

स्वाधिष्ठाने जपाद् ध्यानाज्ज्ञानं मन्त्रप्रयोगजम् ।
भवत्यथ ततो ध्येयस्यापि ज्ञानं भवेदलम् ॥१९५॥

मणिपूरे जपाद् ध्यानाद्, मन्त्रे प्राणगतिर्भवेत् ।
तथा ध्येयस्य मनसि, सुरता जायते ध्रुवम् ॥१९६॥

अनाहते जपाद् ध्यानादैहिकञ्चेच्छितं फलम् ।
फलं दातुं समर्थः स्याद्, ध्येयश्चापि तथा भवेत् ॥१९७॥

विशुद्धेऽथ जपाद् ध्यानान्मन्त्र एकाग्रतां व्रजेत् ।
ध्येयश्च स्थिरतां याति, ध्यातुश्चित्ते निरन्तरम् ॥१९८॥

आज्ञाचक्रे जपाद् ध्यानान्मन्त्रे चैतन्यमुद्भवेत् ।
ध्येयस्यापि भवेत् तद्वच्चैतन्यं हृदि सर्वथा ॥१९९॥

नैर्ऋतेऽथ जपाद् ध्यानात्, कामक्रोधादयः समे ।
सर्वथा विलयं यान्ति, साधना च प्रवर्द्धते ॥२००॥

आग्नेयेऽथ जपाद् ध्यानाद्, दह्यन्ते कर्मराशयः ।
शुद्धो बुद्धो मुक्तज्ञानस्वरूपश्च भवेद् यतिः ॥२०१॥

ईशाने च जपाद् ध्यानादीशशक्तिरवाप्यते ।
वाञ्छितं पूर्त्तिमायाति, सकलं कल्पवृक्षवत् ॥२०२॥

वायव्येऽथ जपाद् ध्यानाद्, वायुवद् बलवान् भवेत् ।
दूरदृष्टिं खेचरत्वं, लभते नात्र संशयः ॥२०३॥

... ... ॥२०४॥

२५. बहिर्यागान्तर्यागपूर्वकः पूजाविधिः —

तथा च प्रक्रियाऽप्यस्या, ज्ञातव्या शास्त्रनोदिता ।
यया विना न सिद्धिः स्यात्, कल्पकोटिशतैरपि ॥२०५॥
बाह्यान्तर्यागयोस्तत्र, क्रमः पूजाविधिस्तथा ।
संक्षेपादुच्यते शिष्टं, ज्ञातव्यं गुरुवक्त्रतः ॥२०६॥
अनाहते बाह्ययागश्चान्तर्यागो मणौ स्मृतः ।
नैर्ऋत्ये च तदा पूजा, जायते सर्वसिद्धिदा ॥२०७॥
मणिपूरे बाह्ययागः, स्वाधिष्ठाने द्वितीयकः ।
आग्नेये च तदा पूजा, कर्तव्या सिद्धिमिच्छता ॥२०८॥
स्वाधिष्ठाने बाह्ययागश्चान्तर्यागो विशुद्धके ।
ईशाने च तदा पूजा, क्रियते साधकोत्तमैः ॥२०९॥
विशुद्धे च बहिर्यागोऽन्तर्यागस्त्वनाहते ।
वायव्ये च तदा पूजा, भवत्येषः क्रमो मतः ॥२१०॥
कालीकल्पक्रमो ह्येष, गदितोऽत्र यथोदितः ।
एतत्क्रमोत्तरं कुर्यात्, सुन्दरीकल्पसाधनाम् ॥२११॥
आज्ञाचक्रोत्तरं तत्र, दश स्थानानि सन्ति हि ।
एकैकाङ्गुलमूर्ध्वस्थान्युच्यन्ते तानि साम्प्रतम् ॥२१२॥

२६. देहे चतुर्णां पीठानां स्थितयः —

मूलाधारे कामराजं, जालन्धरमनाहते ।
आज्ञायां च पूर्णगिरिमुड्डयानं ब्रह्मरन्ध्रके ॥२१३॥
चत्वारि पीठान्येतानि, देहे तिष्ठन्ति सर्वतः ।
आराधनां विधायैषां, मुक्तो भवति मानवः ॥२१४॥

२७. देहे शाम्भवी-शाम्भवानां स्थितयः —

परेश्वर्या युतस्तिष्ठत्याज्ञाचक्रे परेश्वरः ।
विश्वेश्वर्या च सहितो, विश्वेशस्तु विशुद्धके ॥२१५॥

हंसेश्वर्याऽनाहते च, हंसेशः सह तिष्ठति ।
संवर्तेश्या च मणिके, संवर्तेशः सह स्थितः ।।२१६।।
द्वीपेश्वरी-द्वीपनाथौ, स्वाधिष्ठाने विराजतः ।
नवात्मकेश्वर्या युक्तो, मूलाधारे विराजते ।।२१७।।
नवात्मकेश्वरो नित्यं, शाम्भवो योगसिद्धिदः ।
षडन्वयेश्वरीयुक्तः षडन्वय-विभुस्तथा ।।२१८।।
सहस्रारे स्थितो नृणामिति प्रोक्तं महात्मभिः ।
शाम्भव्यः शाम्भवा देहे, यथा तिष्ठन्ति तत्क्रमः ।।२१६।।

२८. देहे बिन्दुनादमहालिङ्गानां स्थितयः —

आज्ञाचक्रे भवेद् बिन्दुर्नादः स्यात् तत उच्चकैः ।
सहस्रारे महालिङ्गमिति योगे विभावयेत् ।।२२०।।
एवं शिवालये देहे, शिवशक्तिनिकेतनम् ।
ज्ञात्वैव सर्वदा कार्या, साधना तत्त्वदर्शिभिः ।।२२१।।

२९. नादबिन्दुयोगलक्षणम् —

मणिपूरस्य पद्मस्य, कर्णिकायां महारजः ।
ताम्रवर्णं च भवति, पूरकेण तदुन्नतम् ।।२२२।।
कुण्डलीसहयोगेन. कृत्वा पश्चात् सहस्रके ।
पद्मेऽथ कर्णिकायां वै, शुद्धस्फटिककान्तिना ।।२२३।।
कोटिसूर्यप्रतीकाश-तेजोरूपेण बिन्दुना ।
मेलयेदेष वै "नाद-बिन्दु-योग" इतीरितः ।।२२४।।
योगिनः साधना सूक्ष्माऽपीयमेवास्ति वर्णिता ।
वीर्यमास्ते प्राणशक्तिस्तन्नाशे ह्रसतीह सा ।।२२५।।

३०. महारजोवीर्ययोगलक्षणम् —

अपानशक्तेरुत्थानादुदानाग्नेश्च योगतः ।
वीर्यस्य प्राणशक्तिस्तु, प्रभवत्यूर्ध्वगामिनी ।।२२६।।